अमरनाथ शुक्ल

विद्या प्रकाशन मन्दिर
नई दिल्ली-110002

माँ को

श्रद्धान्वित समर्पित

तेरी ममता ने मुझे जो संवेदना
दी, उसी से यह सृजन
संभव हुआ।

कहने को कुछ नहीं रह गया है। घनीभूत पीड़ा तथा संवेदना के अन्तर्द्वन्द्व से जो लिखा गया, उसे पढ़ने के बाद तो केवल पाठक के पास ही कुछ कहने-सुनने को बचता है।

जिन्दगी के सफर मे चलते-चलते जिन हादसों ने प्रभावित किया, मर्माहत किया, आदमी के रिश्तों के वदलते मूल्यों की स्व-केन्द्रित भावना की मैंने जो अनुभूति की, वही मेरी वेदना इसमें उजागर होने को छटपटाई है।

वह सुख-दुख जो भावना के स्तर पर दूसरों को अपना सहभागी बना ले, वही उसका परम पावना है। पाठकों को यदि कहीं लगे कि यह सब उनकी आस-पास की जिन्दगी से जुड़ा है और वे इनके पात्रों के सहभागी हैं तो मेरा पावना मुझे मिल जायेगा।

—अमरनाथ शुक्ल

आज जब उसके अपने ही पेट के जाये ने उसे 'राँड' कह दिया तो वह लाज मे डूब-सी मरी। बेटे से वह क्या कहने आई थी, यह तो भूल चली, अब मुँह कहाँ छिपाये, यह सोच हो गया। उसे ऐसा लगा, जैसे गर्म शीशा पिघल कर कान के रास्ते हृदय मे उतर गया हो। जिन लोगों के बीच वह जीवन भर इज्जत पाती रही, उन्ही के बीच उसका वैधव्य दुत-कारा गया और वह भी कोख-जाये पूत से।

रँडापा नही कटता निपूती का, पर पूतों वाली को सुहाग मिट जाने पर भी रँडापे की बेसहारी नही होती। मगर सहारे का वही पूत जब 'राँड' कह दे तो दु ख की सीमा नहीं रहती।

दुख जब दिमाग में रहता है तो आदमी सोचता है, रोता है, पर दिमाग से उतर कर वही जब हृदय मे पहुँच जाता है तो भावना के वेग मे मे मूक हो जाता है—केशव कहि न जाय का कहिए। अन्नदा की हालत भी कुछ ऐसी ही हो गई। जवाब न दे सकी, पर लगा जैसे पैरों मे सिल बँध गई। निर्वाक् मुँह फेर चली—अनिश्चित, अलक्ष्य।

—इस देश में नारी का गौरव गाते ऋषि-मुनि नही थके, पर पूजनीय नारियाँ ही शायद सबसे ज्यादा अपमानित और प्रताड़ित हुई है। भरी सभा मे द्रोपदी को निर्वस्त्र होते बड़े-बडे धनुर्धरों ने देखा, वयोवृद्ध परि-जनों ने देखा, पर प्रतिवाद के नाम पर नारी की लाज को नमक से ज्यादा मूल्य नही मिला। और तो और स्वयं सती सीता भी भगवान राम के द्वारा लाछित हुई। द्रोपदी की लाज को भी भगवान ने हजार हाथों से बचाया। सीता का दु.ख धरती मैया ने अपनी छाती फाड़ कर समेट लिया। पर मेरा दुख वनवास दिया सा।…मैं अभागी……

उसके विचारों को झटका लगा। अपनी पीड़ा का कैसा असवद्ध तार वह जोड बैठी ? किसकी तुलना मे उसने अपने को लाकर खड़ा किया ? यह ध्यान आते ही वह मन-ही-मन कुछ सकुचित हुई। क्षण-क्षण में विचारों के आवेग से उसकी मुद्रा बदलती जाती थी। इन विचारो मे खोयी हुई वह कहाँ जा रही है, इसका ज्ञान चेतन मन का न होते हुए भी अवचेतन मन उसे शान्ति की जगह पर ले ही आया।

अन्नदा के विचारों का तारतम्य तब टूटा जब वह, अपने उस खेत की मेड पर खडी हुई, जो उसके जीवन की एक बहुत वडी निधि थी।

खेत मे पहुँचते ही चारो ओर से वसन्ती बयार का एक झोका आया, उसे ऐसा लगा मानो जौ, गेहूँ के पौधे सरसों के पीले फूलों से अँजलि भर कर उसका अभिनन्दन कर रहे हों। जैसे कह रहे हों "आओ लक्ष्मी ! हम तुम्हारा स्वागत करते है।" किसी की सहनुभूति पाकर दुख जैसे अधिक जोर से भडक उठता है, बस वैसे ही छाती तक ऊँचे इन सरसों के पौधों को आलिंगन-वद्ध कर वह फूट पडी। कठ नहीं फूटा, पर आँखों के मोती झर चले। मैं हतभागी···! विगत वैभव और सौभाग्य की याद एक विद्युत लहर-सी उसके मस्तिष्क मे कौधी, पर दूसरे ही क्षण जीवन मे शुरु होने वाली विपत्ति के काल्पनिक अन्धकार से वह सिहर उठी।

कोई उसे इस प्रकार खडी हुई देखेगा तो क्या कहेगा? यह सोचकर वह वहीं मेड पर बैठ गई। दुख के घनीभूत कोहरे मे विचारो की झाइयाँ उडने लगी। किसी का कोई तारतम्य हीन ही, सब बिखरे-बिखरे, उखड़े-उखड़े। इस आत्म-विस्मृति में दिन कितना ढल गया, उसे ज्ञान ही नही रहा। चेतना तब हुई जब अपने घोंसलों को लौटते हुए तोतों की पाँतो से आकाश 'टें टें' की ध्वनि से भर गया। गोचर से घरों की ओर लौटते हुए पशुओं के झुण्ड में गाय ने घर पर खूँटे मे बँधे अपने छोटे से बछडे की याद मे एक लम्बी-सी डकार ली। धरती और आकाश जैसे सजीव होकर गूँजा।

अन्नदा को भी घर की याद आई। किस घर को जाए ? अपने घर को, कौन सा घर, माटी की दीवारों से घिरे उस घर मे, जिसे उसने अपने सपनों से सँजो कर अपनी कामना को मूर्तरूप दिया था, जिसके साए मे उसे अपनी जिन्दगी की कशमकश से राहत मिली थी ? या उस घर मे जो केवल अब एक

बाटा है। जहा उसका अपना कोई नही रहा अब, उसमे रहने वाले नही रहे अपने अब ? उनका कौन है वहाँ ? लेकिन कौन नही है, सब है—बेटा है, बेटी है, बहू है, पोता है। नही नही, उन सब के होने का जो अपनापा होता है वह नही रह गया शायद। अब तो केवल इन रिश्तो की लाश रह गयी है, रिश्ते की आत्मा मर गई है। मैं कब से यहाँ अकेली अपनी वेदना के सागर मे डूब उतरा रही हूँ, कोई भी तो नही आया, मन की थाह लेने, मान की पतवार देने। मेरे सुख-दु ख की परवाह अब किसे रह गयी है ? अपने ही घर मे अपने ही लोगो के बीच एक उपेक्षित और तिरस्कार भरी जिन्दगी के बोझिल दिन गिन-गिन कर बिताने होंगे—मन के मान की भावना ने एक बार फिर उसे झकझोर दिया, मन फिर भारी हो गया। घर की ओर उठते पैरों मे लगा सिल बंध गई।

"माँ ! माँ !"—पुकारती हुई मदा घर मे घुसी।

मंदा की दुनियाँ निराली थी। दुख और चिन्ता की हल्की-सी रेखा भी उसके मन को न छू पाई थी। मन की स्वच्छन्दता के आगे आज तक किसी ने काठ न रखा था—वह उन्मुक्त, निश्छल, निर्विकार थी।

अभी-अभी वह कही बाहर से खेल कर आई है। धूल-धूसरित चेहरा बिखरे बाल, थकी-थकी साँसें, कुछ ढूंढती-सी आँखे।

उसने एक बार फिर पुकारा—"माँ······आँ !"

"तुम्हारी माँ कही कोप-भवन रचाये बैठी होगी। साँझ की बेला कुछ असगुन न करें तो दरिद्दर कैसे आये ?"—उत्तर दिया मदा की भाभी ने।

भाभी की ये अटपटी बात मदा के दिमाग मे नही उतरी। बोली—"भाभी ! माँ कहाँ है ?"

"अहिवात जगाने गई है, मुनी !" भाभी ने फुंकार किया।

इस बार भी शायद उसके पल्ले कुछ नही पडा। बोली—"भाभी ! सीधी तरह बताओ न, यह क्या उलट-पुलट जवाब दे रही हो ?" माँ से

मिलने की उत्सुकता से उसने यह कहा। मगर बहू को तो ऐसा लगा जैसे उससे जवाब-तलब किया जा रहा हो। तडप कर बोली—

"ऐ दुलरैतिन ! ज्यादा जवान मत लड़ा। अपना यह दुलार, अपनी अम्मा को ही दिखाना। मुझसे ज्यादा टिपिर-टिपिर मत किया कर, समझी !"

मुँह मटका कर, हाथ नचा कर बहू जो बोली, तो मंदा सन्न हो गई। भाभी का यह व्यवहार उसकी समझ में नहीं आया। माँ घर में नहीं है और पूछने पर भाभी इस तरह जवाब दे रही है, जरूर कोई बात है, ऐसा उसके ध्यान मे आया। एक अज्ञात आशंका से उसकी सारी चंचलता नष्ट हो गई। कुछ गम्भीर-सी बोझिल होकर वह वहाँ से खिसकी। भाभी की मुद्रा और कठोरता का पहला आघात उसके कोमल मन पर हुआ।

वह पड़ोसिन के घर गई—"चाची ! मेरी माँ यहाँ है?"

चूल्हे की आँच को फूँक मारती हुई चाची ने जब मंदा की आवाज सुनी तो मुँह ऊपर उठाया। धुएँ के मारे पानी भरी आँखों को आँचल से पोंछा और कहा—"कौन ? मंदा बिटिया ! तुम्हारी माँ यहाँ तो नहीं आई लल्लो।"

मंदा कुछ न बोली, रुकी भी नहीं। कुछ अधिक उद्विग्न होकर चली गई। दो चार घरों में और पूछा, पर जब हर जगह 'नहीं' उत्तर मिला, तो उसका आश्चर्य बढ़ गया। 'माँ गई कहाँ ?' यही विचार उसे मथे जा रहा था। संघर्ष से राह मिली। उसने दोनों हाथों की चुटकी बजाई। 'ओ ! माँ गई होगी खेत में'—अपने से ही कहती हुई वह दौड़ गई और खेत में जा पहुँची।

खेत की पहली मेड़ पर खड़ी होकर उसने पुकारा—"माँ···आँ।"

अन्नदा का खोया मन माँ के 'आँ···' की गूँज से भर गया। वह खड़ी होकर बेटी को देखने लगी कि इतने में मंदा लपक कर उसके पास पहुँच गई। जिस माँ के लिए वह इतनी उदास थी वह माँ उसे मिल गयी, इसलिए वह खुश बहुत थी, पर माँ को पाने के लिए उसने जो परेशानी उठाई थी, उसकी शिकायत करती हुई भरे स्वर से बोली—"माँ, इतनी देर तक आज तू यहाँ क्या कर रही है ? कब से तुझे खोज रही हूँ ?"

अन्नदा कुछ बोली नहीं। अपने सवाल का जवाब न पाकर मंदा कुछ चौकी। उसने देखा, माँ का चेहरा कुछ भारी-भारी है। माँ के बारे मे भाभी से जवाब सुनकर मदा ने जो अनुमान लगाया था, माँ का चेहरा देखकर वह और पुष्ट हो गया। जरूर भाभी से कुछ खट-पट हुई है, ऐसा उसे निश्चय हो गया।

उसी ने फिर कहा—"माँ! क्या बात है? कुछ बोलती क्यों नहीं? गुमसुम-सी यहाँ क्यो हो बैठी है? घर चलो न।"

अन्नदा को लगा जैसे उसका दुःख मदा ने भी ताड लिया। तुरन्त ही अपने को सयत कर बोली—"कुछ नहीं बेटी! होगा क्या? चलो चलें।" —कह कर वह चलने लगी।

पीछे आती हुई मंदा बोली—"कुछ बात जरूर है माँ! चाहे तू बता मत, पर मुझे तो ऐसा लगता है कि भाभी से कुछ आज तेरी बतकही जरूर हुई है।"

अन्नदा मुड कर खडी हो गई, पूछा—"तुझे कैसे पता? किसने तुझसे कहा?"

"कहा किसी ने नहीं, मैं अपने ही अन्दाज से कह रही हूँ। बात यह है कि मैं जब घर में आई और तुम्हें पुकारा तो पहले तो भाभी कुछ बोली नहीं, और जब बोली तो ऐसा कि बात समझ में कम आई, भय ज्यादा लगा। उनका हाथ नचाना, मुंह मटकाना देखकर तो मैं डर गई और चुपचाप वहाँ से खिसक आई। दो एक जगह और ढूंढा, पर जब कहीं पता न लगा तो मैं और घबराई। मिली तुम यहाँ अकेली, कुछ उदास-सी। इसी से कह रही हूँ कि कुछ बात हुई है।"

बेटी की ये बातें सुनकर अन्नदा की छाती भर आई। उसने लपक कर उसे छाती मे चिपका लिया। दुख सहानुभूति पाकर फूट पड़ा। जब झर-झर आँसू मदा के ऊपर गिरे तो वह चौंककर अलग हो गई और बोली—"माँ तुम रो रही हो?"

अन्नदा आँचल मे अपने आँसुओ को पोछती हुई बोली—"तेरा डरना, और मेरा रोना तो अब चलता ही रहेगा।"—कहती हुई वह घर की

ओर चली। गोपाल न सही, कोई तो आया। उसके मन का गुबार आँसुओं के रास्ते निकल गया। मन हल्का हो गया।

सांझ की बेला। खपरैल और फूस की छतों को बेधकर उठता हुआ धुआँ शीत में बोझिल होकर नीचे ही फैल गया था।

अन्नदा को आते देखकर, गाय का छोटा बछड़ा अपने रस्से को पूरा खींचकर 'अ' 'माँ'...... !' करके रँभाने लगा। उसका ध्यान बछड़े पर गया। जब वह बाहर खेतों की ओर जाती तो इसके लिए कुछ न कुछ हरा चारा हाथ में लेकर ही आती। यह भी अन्नदा को देखते ही एक जोर की डकार लेकर बुलाता था, पर आज वह उसे क्या दे? खाली हाथ, दुखी मन। इस पशु को मेरी पीड़ा का क्या पता? उसने बछड़े को पुचकारा भी नहीं। मुँह फेर कर चली गई। बछड़ा कुछ देर तक रँभाया और फिर निराश होकर स्थिर हो गया।

अलाव में अभी तक आग नहीं पड़ी थी। दरवाजे पर दीया भी नहीं था। अन्नदा अँधेरे में ही आकर अलाव के गढ़े के पास बैठ गई और मदा से कहा—"जा, वह से थोड़ी आग ले आ। अलाव जला दूँ।"

मदा हिचकिचाई, गई नहीं।

अन्नदा ने देखा कि मदा अभी खड़ी ही है, गई नहीं। बोली, "सुनी नहीं? तुझसे ही कह रही हूँ। थोड़ी आग ले आ।"

मदा अब न रुक सकी। गई, पर अनमनी होकर। अन्नदा उठकर अलाव जलाने के लिए कुछ कंडे आदि इकट्ठा करने लगी।

मदा घर में सहमी हुई घुसी। मुन्ना ओसारे में सो रहा था। उसे देखते ही वह प्यार किये बिना न रह सकी। मुन्ने को चारपाई के निकट आकर वह खड़ी हो गई और सोते हुए मुन्ने को एकटक निहारने लगी। मन भर गया तो झुककर उसने चूम लिया। गालों पर मृदु-स्पर्श पाकर मुन्ना चौंका और एक बार हाथ-पैर झटककर फिर शान्त सो गया। मदा

इस आनन्द से अभिभूत होकर हँसी ही थी कि बहू ने रसोई घर से निकलते हुए उसकी यह हरकत देख ली। कुछ गुस्से में बोली—"जगा, दे जगा दे। कितनी मुश्किल से सुलाकर चूल्हे में जल रही हूँ। तुम माँ-बेटी का तो पता ही नही रहता। जब इसे खेलने-बहलाने का वक्त होता है, खुद खेलने चली जाती है, अब आई है सोते को प्यार करने। कहाँ गई थी अब तक? अम्मा कहाँ है—पता लगा?"

बहू के इस प्रकार आकस्मिक आगमन और सवालों से मदा सिट-पिटा गई। उसका जवाब न देकर अपनी बात कह बैठी—"भाभी, थोड़ी आग दो, अलाव जलाना है।"

"मैं पूछती हूँ, अम्मा कहाँ है? इसका जवाब न देकर अपनी ही गा रही है।"—बहू का स्वर कुछ कड़ा हो गया।

"मड़ैया मे है। खेत की तरफ गई थी।"—मदा ने बड़े शान्त भाव से कहा।

"हे राम! छोकते नाक काटेंगी। कैसे चलेगा? तनिक तनिक-सी बातों पर मुँह फुलाकर चल देती है।"—बडबड़ाती हुई रसोई घर से आग लाकर उसने मंदा को दे दी।

मंदा आग लेकर चुपचाप चलती बनी।

अन्नदा कब से बैठी राह देख रही थी। झुंझलाकर बोली—"अब आ रही है? आग ही नही मिली तुझे इतनी देर तक? क्या करती रही?"

मदा ने कडे महित आग अलाव के गढे मे डालते हुए कहा—"मुन्ने को प्यार करने लगी।"—भाभी से हुई बातों का जिकर करना उसने ठीक न समझा।

सूखी लकडियों से आग को धधकाते हुई अन्नदा बोली—"जा मुन्ना को यहीं ले आ।"

"वह सो रहा है।"

"तो तू सोते में प्यार कर रही थी?" आच की ओर से मुँह हटा कर अनन्दा ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ।"

अन्नदा केवल हँस भर दी। सोचा, इसे अभी खुद प्यार चाहिए, पर

छोटे बच्चे को देखकर यह भी उसे हम सब जैसा प्यार करती है। बच्चों का मन—मन का राजा।

अलाव की आग धधक गई। ठड दूर करके आँच की गर्मी काफी भली लग रही थी। अलाव पर माँ-बेटी के अलावा अन्य कोई न था। पर दोनों चुप। मन किसी वेदना की ठड मे सिकुडा पड़ा था।

मौन को तोडते हुए कुछ देर बाद अन्नदा बोली—"तेरी भाभी क्या कर रही है ?"

अलाव की लकडी बुझकर धुआँ दे रही थी। जलाने की कोशिश में मदा की आंखे धुएँ से भर गईं। मीजती हुई बोली—"खाना बना रही हैं।"

लकडी अभी तक न जली। जब ज्यादा धुआँ फैलने लगा तो अन्नदा ने ही फूंक मारी। लकडी मे भक् से लपट फूटी।

"अभी तक खाना ही नहीं बना सकी ? क्या व्यजन रच रही है ? तेरा भैया गोपाल घर मे नही है क्या ?" अन्नदा ने पूछा।

"न।" मदा इतना ही सक्षिप्त उत्तर देकर चुप हो रही।

अन्नदा को शका हुई—गोपाल इतनी देर गये घर मे नही है ? कहाँ गया होगा ? शाम को तो वह कभी नही निकलता। आज कहीं गया है तो किसी को पता ही नही ?—माँ का मन छटपटाने लगा।

कुछ व्यथित स्वर मे बोली, "अपनी भाभी से पता कर आ, कहाँ गया है इस वक्त ?"

मदा दौडी-दौडी घर मे गई। बहू रोटी सेक रही थी। रसोई मे घर घुसकर मदा ने कहा—"भाभी ! भैया कहाँ गये ? माँ पूछ रही है।"

चूल्हे की रोटी फुलाते हुए बहू ने उत्तर दिया—"मुझे क्या पता ? कोई मुझे बताकर जाते है। सैर-वारी घूमने गये होंगे या कहीं मजलिस जमी होगी।"

मदा चुप-चाप वापस चली गई। भाभी के तेवर आसमान मे है, इसलिए और कुछ कहने पूछने का साहस न हुआ।

"माँ ! भाभी को नहीं पता। कह रही है कि कहीं सैल-वारी घूमने गए होंगे या किसी के यहाँ बैठे होंगे।"

यह सुनकर अन्नदा का मन खटका।—यह खेत-बारी घूमने का वक्त है? खेत से तो मैं आयी ही हूँ। वहाँ तो वह गया ही नहीं। हो सकता है किसी के यहाँ बैठा गप लगा रहा हो, यह सोचकर उसने मंदा से कहा—"यहीं से आवाज तो दे, भइया! भइया!! करके। कहीं होगा तो बोलेगा ही।"

मंदा की मधुर आवाज कोयल-सी गूँजी, पर गोपाल का उत्तर नहीं आया।

अन्नदा गोपाल के स्वभाव को जानती थी, उसके मन को जानती थी। बेटे को माँ से बढ़कर कौन समझ सकता है। वह चुपचाप उठी। ओसारे में दीया लिया। देखा, ओसारे में नहीं, दरवाजे में नहीं, मड़ैया में नहीं। गाँव में किसी के यहाँ बैठा होता तो मंदा की आवाज सुन कर बोलता तो सही। आकुल-सी, व्याकुल सी, वह दीया लिए दालान में गई। देखा, एक कोने में खाट पर बिना कुछ ओढ़े-बिछाये गोपाल चुपचाप पड़ा था।

आले में दीया रखकर अन्नदा उसके पास गई।—'गोपाल! गोपाल!' पुकार कर अन्नदा ने उसे झकझोरा। गोपाल 'ऊँ ऊँ' करके करवट बदलकर रह गया। अन्नदा ने फिर झकझोरा—"गोपाल! उठ, यह सोने की कौन-सी बेला है! न खाया, न पिया, आकर चुपचाप इस कोने में पड़ा है। कभी और भी यहाँ सोया था, जो आज यह नई जगह सोने के लिए चुनी है। उठ, जल्दी उठ।"

गोपाल नहीं उठा। वह करवट बदलता ही रहा। पर जब देखा माँ नहीं मान रही है तो झिड़क कर बोला—"मानती क्यों नहीं? मैंने कह दिया कि मुझे भूख नहीं है। मैं न उठूँगा, न खाऊँगा। तू जा यहाँ से, मुझे तंग मत कर।"

"जाऊँ कहाँ? खायेगा क्यों नहीं? क्या हुआ है जो आज बिना खाये ही सोयेगा और वह भी यहाँ इस कोने में।" अन्नदा के स्वर में आग्रह था।

गोपाल झल्लाया—"हाँ, यहीं सोऊँगा, मेरी मरजी। खाने को मन ही नहीं है। मुझे चुपचाप पड़ा रहने दे। गुस्सा मत दिला, यहीं सो…"

अन्नदा झपट कर बोली—"नही तो में अब क्या कसर रह गई है। 'नहीं तो' के आगे वाली वातो की शुरूआत करना तो तू अब सीख ही गया है। पर इसका बुरा मैं कहाँ तक मानती रहूँगी। यह सब तो जिन्दगी के साथ बँधा है। उठ, अब देर न कर।"

उत्तर दिया बहू ने, जो अन्नदा के अनजाने ही आकर खडी हो गई थी।—"अम्मा, रूठे को ऐसे से ही मनाया जाता है, जैसी बोली बोल कर तुम मना रही हो?"

"कोई रूठा ही नहीं बहू जिन्दगी मे अब तक, तो मनाना कैसे आये? लो, इसे उठाओ। कह दो ढग से खा-पीकर सोये।"—कहकर अन्नदा चलने लगी। बहू फिर बोली—

"मैं पूछती हूँ कि कौन-सी ऐसी तगहर बात कह दी थी इन्होंने जो इस तरह मुँह फुला कर चली गई थी। इतनी-इतनी बात पकड कर चलने मे कैसे ठिकाना लगेगा?"

अन्नदा का मन दुःखी होकर इतना भारी हो गया था कि बहू की बात हवा मे तैर कर बह गई। उसके मन के किसी कोने को भी वह छू न पाई। चुपचाप दालान के बाहर हो गई। वह अपने को उखड़ी-उखडी-सी महसूस कर रही थी। बाहर आकर अलाव के पास बैठ गई। सदा वहाँ अकेली बैठी थी—गुमसुम; मार-पीट या लड़ाई देखकर छोटे बच्चों के मुँह पर जैसी अपूर्व गम्भीरता छा जाती है, वैसी ही अव्यक्त गम्भीरता सदा के मुँह पर छायी थी।

जब सन्नाटा नहीं सहा गया तो उसी ने गंभीरता से कहा—"माँ!"

माँ कुछ बोली नही। सदा दुबारा बुलाने का साहस नही कर सकी।

थोडी देर बाद अन्नदा ने कहा—"जा तू खाना खाकर सो। तू क्यों बैठी है?"

"और तुम?"—सदा ने सवाल किया।

"रोज मेरे साथ ही खाती थी क्या, जो आज 'तुम-तुम' कह रही है। पिटने का मन न हो तो चुपचाप उठ यहाँ से।"—अन्नदा को गुस्सा चढ रहा था।

सदा डर कर थोडी दूरी पर खड़ी हो गई, पर गई नही। अन्नदा का

दुखी मन आज अपनी ममता से ही झलना उठा। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसे आज बिल्कुल एकान्त चाहिए, जहाँ वह अपने से, केवल अपने में घुलकर बातें कर सके।

थोड़ी देर में दालान में बड़बड़ाती हुई बहू बाहर निकली—"इसमें जानमारी मेरी है। दिन भर डह-मर कर काम करूँ और शाम को खाना खाने के लिए एक-एक की आरती उतारूँ। ऐसा मालूम होता है जैसे मैंने ही कुछ कहा हो। मुझे क्यों लाल-लाल आँखें दिखाते हो? लड़ो तुम माँ-बेटे खुद, और दुर्गति हो मेरी।" मायका भी निगोड़ा ऐसा नहीं कि दो चार माह के लिए मैं वहीं चली जाऊँ और इस जजाल से छुट्टी पाऊँ।" —कहती हुई धमधमाती हुई वह मड़ैया में आ गई—"चलो, अम्मा! पहले तुम खाओ। सरवन कुमार आज बाद में खायेंगे।"

बहू की इन बातों की कटुता अन्नदा के बोझिल मन पर उतर न सकी। बोली—"मदा को खाना दे दो, वह सोये। रोज मैं ही गोपाल से पहले खाती थी क्या, जो आज मुझे पहले खाने को कह रही है। रसोई में मर्द-मानुस को पहले खाना चाहिए, औरतें बाद में खाती है।"

"मदा नन्दा सब एक साथ चलो। आधी रात तक मैं एक-एक जने को अलग-अलग न बैठे खिलाती रहूंगी, मैं भी इन्सान हूँ। मैं तो कह कर थक गई, तुम्हीं जाकर कहो पहले-पीछे खाने को। राम! राम! कभी इधर कभी उधर। किसी के नखरे ही नहीं खतम होते। अब तो इस घर में जीना दूभर है। छीकते नाक काटी जाती है। मुन्ने के बाप ने ऐसा क्या कह दिया था, जो आज दिन-भर से फूली-फूली घूम रही हो। दिन-भर बैल की तरह इस घर में काम से मरे और खाने का बखत रकत हो जाय। भगवान दो रोटी खाने का आसरा दिये है तो घर के परानी ऐसे हैं कि रोटी हलक के नीचे न उतरे। दलिद्दर आवे तो कैसे न आवे। मेरी तो तौबा रही। मुझे भेज दो नैहर, चाहे जैसे दिन काट लूँगी। तुम्हारा नखरा तुम्हारे पूत उठावें, मेरे तो वश का नहीं। जा रही हूँ मैं भी खाना ढँक कर लेटने। चाहे कोई खाने उठो चाहे नहीं"—कहती हुई बहू तुनक कर घर में चली गई।

बहू की सारी झल्लाहट मुझ पर ही है। सारा कसूर घुमा फिराकर

मेरे ही सिर डाल रही है—अन्नदा यह सब समझ रही थी, पर वह इस अनावश्यक विवाद को टालना चाहती थी, अतः चुप ही रही, पर मन के बोल मन में उभरे।—गोपाल ने आज जो बात मुझे जीवन में पहली बार कही है उसी से वह भी खिन्न है। पहली बार होने के कारण वह चोट और भी गंभीर हो गई है। बाद में जिन्दगी का यही क्रम हो जायेगा तो न उसे दुख होगा और न ही मुझे। वह दुखी है कि उसने मुझे 'रांड' कहकर दुःख पहुँचाया। उसे डर है कि शायद इस दुःख के मारे मैं खाना ही न खाऊँ। अगर वह पहले खा ले और मैं खाने न उठी तो वह एक और पाप का धनी हो जायेगा। पगले, ऐसी बातों को कब तक सोचेगा। और ऐसी बातों को सुन कर मैं कब तक खाना छोड़ रखूंगी? अब तो लगता है यह सब ऐसे ही चलता रहेगा, जब तक जिन्दगानी रहेगी—यह सब सोच कर वह उठी और मदा से बोली—"चल अपनी भाभी को कह कि खाना परोसे।"

मदा चली गयी। पीछे-पीछे अन्नदा भी उठी।

अन्नदा का मन आज बहुत भारी था। जाड़े की लम्बी ठण्डी रात और एकान्त आज उसे बड़ा प्रिय लग रहा था। उसके दुखी मन को इस एकान्त शान्त ठंडी रात से बढ़ कर सांत्वना की और कोई वस्तु नहीं चाहिए थी। वह थक-थक कर करवट बदल रही थी। उसे नींद नहीं आ रही थी, वह चाहती भी थी कि नींद न आये। आज वह अपने आपको, अपनी सम्पूर्णता को अपने अतीत के गह्वर में घुस जानना चाहती थी, कि तब उसने भविष्य के जो सपने देखे थे वह आज वर्तमान में कहाँ विला गए। आगे की पहाड़-सी शेष जिन्दगी में होने वाले अपमान, कलह, पीड़ा की भिन्न कल्पनाएँ विगत जीवन की शान्ति, समृद्धि और सौभाग्य की पर्तें उधेड़ने लगीं।

इस घर में पहले की बहू—?

यह घर और वह—?
यह गांव और वह—?
यह परिवार और वह—?

औरत की जिन्दगी। उसके जीवन में अपना कुछ भी नही। समर्पण और त्याग ही उसकी जिन्दगी है। इस दुनिया मे अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को जिन्दगी भर उसे दूसरे मे ही खपाना पड़ता है। अपना कहने को तो केवल उसके मन का वह सुख होता है जो उसे समर्पण और त्याग से मिलता है। वह कभी भी अपने में अकेली सम्पूर्ण और अपने निज की इकाई मे सम्पूर्ण नही रह पाती।

वह बचपन, वह गाँव, वह घर, वह नाते, वह कुल-परिवार आज सब कुछ मेरे लिए पराये है। जहाँ जन्म लिया, जहाँ चलना और बोलना सीखा, जिन लोगों के बीच हँसती-खेलती रही, जिसे मैं अपना कह कर सँभालती रही, सहेजती रही आज वह मेरा कुछ भी नही। उसके किसी भले-बुरे पर मेरा कुछ अधिकार नहीं। उसे छोड़ कर जिसे मैं अपना मानकर यहाँ आई, जहाँ अपना कहने को कुछ भी नही था। अपना कहने लायक कुछ होने को करने के लिए इस तन-मन ने अपने को कितना मार कर यह बनाया, इसका लेखा-जोखा लगाने का कभी समय ही न मिला। पर आज यह भी मेरा नही। इसके बनने-बिगड़ने मे दखल देने की मेरी जरूरत नहीं।—इन विचारो का मदराचल बरबस उसके मानस समुद्र को मथने लगा। फिर तो उस निपट अँधेरे मे सारा विगत अलोकित हो कौंध उठा।

'जब मैं छोटी बच्ची थी, अन्नदा नही राधा। राधा ही मेरा नाम था। माँ की प्यारी, बाप की दुलारी। भइया भी कितना प्यार करते थे? चिढ़ाने का प्यार, रुलाने का प्यार। बिना मुझे साथ लिये न खाएँ, न खेलें। पर हर वक्त चिढा कर रुला दें। मै बावरी भइया की शिकायत माँ से करूँ, काका से करूँ। उन पर डाँट पड़े तो वे रोयें और मैं हँसूं। इस तरह दिन बीतते रहे—हँसी के खुशी के।

उमर चढी तो ब्याह की पड़ी। जब कभी भी माँ और काका इकट्ठे बैठते तो उनकी एक खास चर्चा यही रहती कि अब राधा का ब्याह कर

देना चाहिए। काका काम-काज छोड़कर निकल जाते वर देखी करने तो कभी-कभी हफ्तों आते ही नही। जब आते तो थके और हारे हुए। माँ चिन्तित, काका परेशान और मैं भी दुखी कि मेरे लिए काका को कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है, दर-दर भटकना पड़ रहा है। पर, इन परेशानियों से क्या होने-जाने को था। यही सोचकर घर बैठा नही रहा जा सकता था। इन्ही सब परेशानियो के कारण तो बेटी का जन्म कुछ अच्छा नही माना जाता।

जो जहाँ कही बताता, काका वही पहुँच जाते। घर-वर कही पसन्द न आते रहे हो सो बात नही, पर सुरसा की तरह बढ़ने वाला दहेज का मुँह काका कैसे और कहाँ से भरे? यही सबसे बड़ी रुकावट थी।

हर बाप अपनी बेटी को प्यार से पालता है। काफी दौड़-धूप कर शादी करता है। उसकी बेटी जहाँ जाये, सुख से रहे, इसके लिए वह हर परेशानी उठाता है। कन्यादान के साथ-साथ वह अपनी शक्ति भर, सामर्थ्य भर दहेज भी देना चाहता है, देता है, पर वर का बाप यह नही देखता। उसके आगे भावना का मूल्य नही होता। वह सब कुछ प्रत्यक्ष चाहता है। लड़के का ब्याह करते वक्त ब्याह करना उसके लिए दूसरी बात होती है, पहली बात तो यह है कि उसे दहेज कितना मिल रहा है? उसकी दृष्टि व्यापारिक होती है। वह ब्याह का ही खर्च नही, बल्कि और खर्चों का हिसाब लगाकर दहेज में वसूल करना चाहता है। जिन्दगी का यहाँ एक सौदा वह अपनी समझ से अपने लिए घाटे में नही करना चाहता। कभी-कभी उसके इस सौदे में, उसका लाभ कितना घाटा बन कर नव-दम्पति के जीवन में आता है, यह देखने को वे बैठे नही रहते। बैठे भी रहे तो इसका कारण अनमेल ब्याह को न देकर भाग्य के सिर सारा दोष मढ़कर चुप बैठ जाते हैं। औरत की जिन्दगी की विडम्बना एक तरह से नहीं, हजारों तरह से होती है।

एक दिन काका बाहर से लौटे तो कुछ ज्यादा खुश थे। हर बार की थकावट और निराशा उनके चेहरे पर नहीं थी। अपनी मंजिल पर पहुँच कर मुसाफिर के चेहरे पर जो संतोष और सुख झलकता है, वैसी ही झलक काका के चेहरे पर थी।

वैसाख की तपती दोपहरी में काका लौटे। दरवाजे पर नीम के पेड के नीचे पड़ी खाट पर बैठकर लाठी खाट के सहारे रख दी और कंधे पर से चादर उतार कर सिराहने रखते हुए हाथ का तकिया बनाकर लेट गये। कुछ आराम अनुभव करते हुए जोर से बोले—"हे प्रभो दीनानाथ! राखो सुधि मेरी।"

कुछ देर बाद आँगन मे काका की आवाज आई—"राधा···!" माँ, जो वही बैठी गेहूँ, बीन-फटक रही थी, उत्सुकता से उठती हुई बोली—"तेरे काका आ गए शायद।"—यह कहती हुई वह बाहर चली गई। वह बाहर जाकर काका के पास वही जमीन पर बैठ गई। चली तो मैं भी उत्सुकता से, पर काका कहाँ से आये है और अभी माँ से क्या चर्चा चलायेंगे, यह ख्याल आते ही अव्यक्त लाज के कारण ओसारे तक ही आकर ठिठक गई।

वही से मैंने देखा, काका पसीने-पसीने हो रहे थे। माँ उन्हे पखा झल रही थी। थोडा आश्वस्त होकर काका उठकर बैठ गए। अँगोछे से माथे का पसीना पोछते हुए बोले—"क्या कर रही थी? राधा कहाँ है! थोडा पानी मँगाओ। बडी गर्मी है। पसीने से सारी देह चिपचिपा रही है। थोडा नहा लूँ तो जी जुडाये।"

माँ बोली—"अभी तो पसीना भी नही सूखा। थोडे ठंडे हो लो। नहाने का इन्तजाम करती हूँ। जाने कब बिटिया का भार उतरेगा। कितने दिन हो गये भटकते। जाने मुओं के अपनी बेटियाँ हैं कि नही, जो किसी बेटी वाले का मुँह नही देखते। *क्या हुआ, अब जहाँ गये थे?"*

काका स्वर कुछ खीच कर बोले—"राम राम, ऐसे कटु वचन मत बोलो। इस दुनिया मे सब एक जैसे नही है। भगवान सबकी सुधि रखते है। इस बार ठीक हो गया है। मैं तो वरीच्छा देकर ही आया हूँ। लड़का बहुत सुशील और सुन्दर है। कुल गोत्र भी अच्छा और दहेज का भी मोल नही।"

माँ ने आश्चर्य से कहा—"लडका अच्छा और दहेज का मोल नही? तब तो जरूर कही खोट होगा, आज की दुनिया में ऐसा भोला ब्राह्मण *कहाँ मिल गया तुम्हें? देश-पवस्त मे भी किसी से कुछ पता लता किया कि*

अपने आप ही सब समझ-बूझ लिया।"

"कुछ वहम मत करो। बाप के नाते जितनी जाँच-पड़ताल मैं कर सकता हूँ उतना दूसरा कोई क्या करेगा? बेटी को आँख मूद कर खाँई खदक में डालनी होती तो अब तक कब की उसकी शादी हो गई होती। यही सब देखने-सुनने को मैं भटकता रहा हूँ। देखो जूते का तल्ला उधड़ गया, पैर में छाले पड़ गये। बिना दाना-पानी भटकता रहा। दोपहरी में जब चिड़िया भी पेड़ की डालो पर बैठी दम लेती रहती है, मैं वीराने में अकेले तपती लू में रास्ता नापता रहा हूँ। इतने पर भी मेरे भगवान न सुनते; ऐसी अभागनी तो मेरी बेटी नहीं। ईश्वर दयालु है"—कह कर काका ने दोनोंहाथ जोड़ आसमान की ओर ताका फिर कहा—"चलो ब्याह तिलक की तैयारी करो। दस दिन बाद यही अपनी आँख से देख लेना सब कुछ।"

माँ के चेहरे पर संतोष झलका। वह उठ कर घर आने को हुई। उससे पहले ही भाग कर मैं आँगन में आ गई और इधर-उधर के काम में लग गई। ताकि माँ को पता न लगे कि मैं चुपके-चुपके सब सुन रही थी।

माँ ने काका के लिए शरबत घोल कर मुझे दिया, मैं शरबत लेकर पहुँची तो काका लेटे हुए थे। मुझे देखते ही उठ बैठे। हाथ-मुँह धोया। शरबत का गिलास लेते हुए मेरी ओर देखा। मैंने नजर नीची कर ली। काका ने पीठ पर हल्की-सी थपकी दी और केवल इतना कहा—"राधा!"

मैं नहाने के लिए पानी लाने के बहाने लजा कर घर के अन्दर भाग गई।

तिलक चढ़ा आने के दूसरे दिन बाद से ही एक अजीब खुसुर-फुसुर गाँव में होने लगी। बड़ी-बूढ़ियाँ, सखी-सहेलियाँ, जिसे देखो वही मेरे ब्याह की चर्चा कर रही है। चर्चा भी क्या, केवल मेरे अभाग का रोना। गाँव

मे मैं जिधर जाती, वही दो-चार औरतें खडी यही कहती रहती—'देखो न बहिन, वेचारी का करम फूट गया। एक ही बेटी और यह बुढवा जैसे पगला गया। जान-बूझकर कुएँ मे डालने वाली बात है। न जाने क्या देखकर ब्याह कर रहा है। मेरी बिट्टन के बाप भी गये थे तिलक मे। सुनती हूँ, लड़के के कोई है नही। न माँ न बाप, न भाई न बहिन। लडके की उम्र भी सुनती हूँ, कुछ ज्यादा है। यहाँ तक कि बैल-बधिया खेती-बारी भी नही है। चार-छः भाई पट्टीदारो की छोड़कर और कोई नही। भाई-पट्टीदार किसके होते हैं बहिन! अपने गांव मे ही देख लो न! हर गाँव में ऐसे ही लोग तो बसें न! बेचारी राधा अब किसी दूसरे की पिसौनी कुटौनी करके जिन्दगी वितायेगी। करम का फेर।'—

मैं सब की नजर बचा कर भाग जाती। पर ऐसी बातों को सुन कर मेरे मन मे जो व्यथा दहक जाती थी उससे भाग कर कहाँ जाती? फिर भी हृदय की व्यथा चेहरे पर उदासी बन कर झलकने लगी।

एक दिन माँ ने कहा—"बेटी! कैसे खोयी-खोयी सी रहती है? तबियत तो ठीक है न?"

मैं हँसी—"माँ, अब शायद तुझे कुछ ठीक से दिखाई भी नही देता। मेरी तबियत को क्या हुआ है? खासी भली-चगी हूँ।" यह कह तो दिया, मैंने, पर इसमें कितना सत्य था यह मेरे सिवा एक अन्तर्यामी ही शायद जानते थे।

माँ फिर कुछ न बोली, पर उसके चेहरे पर जो वेदना छा गयी थी, वह मेरी नजरों से छिपी न रही। माँ ने वे सब बातें न सुनी रक्खी हों, ऐसी बात नही। माँ को शायद बेटे से अधिक बेटियाँ प्यारी होती हैं। उसका होने वाला दामाद कैसा है? घर-बार कैसा है? हैसियत कैसी है? इन सब बातों की जानकारी वह अपनो के अतिरिक्त परायों से भी पाना चाहती है। दूसरे के द्वारा अपने जमाई और उसके घर-बार की बड़ाई सुन कर वह फूली नही समाती। पर माँ ने अपने जमाई के बारे मे जो सुना वह उसके लिए बडा दुर्भाग्यपूर्ण था। मेरी होने वाली ससुराल की दरिद्रता की चर्चा गाँव में गन्दे नाले की सडाँध-सी उड़ी। फिर माँ को उसकी बू क्यों न आती, जिसमें उसकी प्यारी बेटी जिन्दगी-भर के लिए

डुबोयी जा रही थी।

हाँ, खानदान तो ऊँचा है, ब्राह्मण भी उत्तम है, पर लडके का अपना सगा कोई नही। गाँव मे पुश्तैनी घर के सिवा और कुछ नही। खेती-बारी बाग-बगीचा का नाम-निशान नही। सभी बाप-दादो ने बेच कर साफ कर दिया—सबके मुँह से यही एक बात सुनते-सुनते माँ का धैर्य टूट गया। एक दिन काका पर वह बरस पडी—

"तुम्हे लोक-परलोक का कुछ डर है कि नही? लोक तो नसाया ही, बेटी का दुख तुम्हारा परलोक भी नाश कर देगा। अपनी ही बेटी से किस *जनम का बदला ले रहे हो? क्या सुन रही हूँ, गाँव में सब की जबान* पर एक ही चर्चा है। अगर यह सब सच है तो मैं अपनी बेटी नही ब्याहूँगी ऐसे भिखमगे के घर। राम! राम!! कैसे तुम्हारी अकल पर पानी पड गया?"—माँ ओसारे मे काका पर गुबार उतार रही थी और मैं गुम-सुम आँगन मे बैठी सब सुन रही थी। एक निरीह गाय—चाहे जिस खूँटे से बाँध दे, कोई शिकायत नही, कोई प्रतिरोध नही।

काका बडे धैर्यवान थे। मैंने उन्हे कभी सहज उत्तेजित होते नही देखा। माँ की गरम-गरम बाते वे सुनते रहे और जब माँ बोल चुकी तो उसी प्रकार सहज भाव से बोले—"बस, कि और कुछ?"

"इतना काफी नही है तुम्हे मुँह चुराने को?"—माँ आवेश मे क्या बकती जा रही थी, उसका ज्ञान सभवत उसे नहीं रह गया।

काका एक फीकी हँसी हँसकर बोले—"इसमे मुँह चुराने जैसी क्या बात है? बेटी को बेच तो नही रहा। किसी कुल-गोत्र-हीन के गले तो नहीं मढ रहा। लडका न तो लूला लँगड़ा है और न ही काना-खोतर। न ही हमारी-तुम्हारी उमर का है और न ही ऐसा कि कोई मुँह मे कौर डाले तो खाना खाये। लोक नसने जैसा तो कुछ दिखता नहीं। रही परलोक की, सो किसने देखा है?"

काका शायद कुछ और भी कहते पर माँ अपने को सभाल नही पा रही थी। बात काट कर बोली—"यह सब तो मैं सुन चुकी हूँ। पर यह तो बताओ कि बेटी यह कुल-गोत्र ओढ़े-बिछायेगी या खाये-पीयेगी? मैं कहती हूँ, इतनी उमर तुम्हारी बीत गई। देस-परदेस मे लोगों को 'बरदेखी' करते

* अगनदा

मैंने नहीं कमाया कि बेटी एक बूंद पानी और एक कौर दाना के लिए तरसे। चलो अपना काम देखो। मुझे कई जगह जा कर चीज-वस्तु जुटानी है।"—कहते हुए काका उठ खडे हुए।

माँ ने बहस करना अब शायद बेकार समझा। व्यर्थ की इस कलह से अब कुछ होने जाने को नही। जो परिस्थिति आ गई है उसे सिर-माथे उठाना ही होगा। सभवत यही सोच कर वह उठ कर अन्दर आने लगी। माँ को आते देख मैं उसकी नजर बचा कर आँगन से कमरे में भागी। कही ऐसा न हो कि माँ मुझे देख ले और ताड़ जाये कि में बैठी-बैठी सारी बातें सुन रही थी। वह घर में आकर काम मे लग गई। काम मे लग तो गई, पर उसके दुखी मन की पीड़ा चेहरे से न उतरी। ब्याह के काम-काज जिस उल्लास और उत्साह से किये जाते है, वह उल्लास और उत्साह नही रह गया था। मेरे विवाह-काज को उसने एक यज्ञ समझ कर नहीं निभाया, बल्कि परिस्थिति से जो विवशता आ गई थी, उसे दुखी मन से वह निभा रही थी। क्योंकि अन्य उपाय नही था। माँ की वह पीडा मैं समझती थी, पर अपने ही ब्याह-काज को मै उछल-उछल कर करती, यह बडी शर्म की बात होती—अत मैं उसके इस प्रकार के किसी काम में हाथ नहीं बँटा सकती थी और न ही उसके मन को किसी प्रकार का सन्तोष दे सकती थी। उन दिनों माँ किसी से कुछ विशेष बोलती भी न थी। मेरे होने वाले पति के घर-बार के सम्बन्ध मे जो हवा फैली थी, उसे देखकर लगता था कि माँ का सिर नीचा हो गया है। वह गाँव की किसी औरत से इस सम्बन्ध मे खुलकर न बोल पाती थी। इस सम्बन्ध में कोई चर्चा उठने पर बात का विषय ही बदल देती।

मेरे लिए दुखी माँ के मन को किसी प्रकार की सात्वना देने का अवसर ही नही था और न ही मैं उसके दुख मे खुल कर भाग ले पा रही थी। इसका दुख मुझे कम नहीं था, पर मैं भी मजबूर थी।

बेटे-पोते हो जाने की उमर मे अन्नदा को आज जब माँ की याद आई तो उसकी आँखें भर आई और उसमे माँ अपनी उस अभागी बेटी के लिए खुद अपनी आँखों मे आँसू लिए आकर खडी हो गई। जैसे कह रही हो—बेटी, क्या मेरी वह आशका झूठी थी? तूने आज मुझे क्यों याद किया? क्या

यही अपना दुखी मन दिखाने को ?

माँ की उस छाया को अन्नदा जवाब भी क्या देती। वह तो खुद ही अपनी दुख-धार में बही जा रही थी। माँ तो अनायास ही कूल-कगार पर अचानक खडी हो गई थी।

ब्याह के दो दिन पहले जब ब्याह के गीत उठे और औरतों ने गाया —"तोहरे भरोसे मइया मैं जग्य रोपेऊँ, मेरो जग्य पूरन होय।" —तो माँ की आँखें इस स्तुति-गीत में छलछला आई। धुन और लय सब कुछ भूल कर माँ अकेली ही बडी देर तक गुनगुनाती रही—"माँ! मेरो जग्य पूरन होय। माँ! मेरो जग्य पूरन होय।'—उसे जैसे रोमान्च हो आया। मानो वह प्रत्यक्ष खड़ी देवी से कह रही थी—मा तुम्हारे ही भरोसे मैंने यह यज्ञ ठाना है, इसे पूरा करना।

माँ के मन मे एक शका जो घर कर गई थी, वह ब्याह के बहुत दिनों बाद तक रही। जब उसने सब कुछ अपनी आँखों से देख लिया तो एक बार फिर उसकी आँखें छलकी थी। पर इस बार जैसे उसका हृदय छलका था। खुशी का प्याला जब मन में लबालब भर गया तो छलक कर आँखो से वह निकला, ओठों पर बिखर गया।

एक दिन बारात आई, बाजे बजे, गीत उठे, पण्डितो का मन्त्रोच्चार हुआ और ब्याह हो गया। अब तक जितनी बातें उठी थी, वे सब ब्याह होते ही भुला देने की चीज हो गई। जो अपना हो गया उसकी हर बुराई अपनी बुराई है, यह समझ कर चलना होगा। ब्याह होते ही मेरा अपना घर मेरे लिए मायका हो गया। असली घर तो वह है जहाँ कुछ है नहीं, एक प्रकार से यह कहे कि घर कहने लायक है ही नही।—ऐसा ख्याल आते ही मेरा मन काँपा।

बेटी को विदा करते बक्त हर माँ रोती है मेरी माँ भी रोयी। पर उसके रोने मे विदाई की व्यथा के साथ-साथ एक और व्यथा थी—बहुत

गहरी, उसकी ममता से भी गहरी।

सीता को विदा करते वक्त उनकी माँ ने तरह-तरह के सिखावन दिये थे, कुछ बातें समझाई थी, कुछ रीति-व्यवहार बताये थे। मेरी माँ मुझे क्या समझाये। क्या बताये? यही उसे नहीं सूझ पड़ता था। किसकी सेवा करने को कहे, किसका आदर करना बताये? न सास न सुसर, न जेठ न जिठानी। माँ मेरा मुँह देखती थी और फफक कर रोती थी। मैं तो घर छोड ही रही थी। पुरजन, परिजन सभी को पराया कर रही थी। मेरे आँसू कैसे थमते? मेरी पीड़ा क्यों न बहती? माँ ने केवल इतना ही कहा—"बेटी क्या समझाऊँ तुझे और क्या बताऊँ? जैसा तुझे सूझ पडे वैसा करना। माँ-बाप की लाज रखना, इससे ज्यादा क्या सीख दूँ?" और वह फफक पडी।

मेरी जिन्दगी का एक अध्याय खतम हो गया। भगवान ने जो आत्मीय नाता-रिश्ता बनाया था, वह सब पराया हो गया। जिन्दगी को एक नये सिरे से, एक नई राह मे चलानी थी। नये नाते अपनाने थे—पैदायशी रिश्तों से भी ज्यादा गहरी आत्मीयता से।

मैं विदा हुई। मेरी बन्द डोली इस घर के दरवाजे पर लगी। औरतें गीत गा रही थीं—

"नवा खपरैलवा छवाउ नए घर दुलहिन।"

यह तो बाद मे पता चला कि गीत उलटा गाया था। खपरैल भी पुराना था और घर भी पुराना। हाँ, दुलहिन नई थी।

मुझे डोली से उतारा गया। बडे धीरे-धीरे घर मे लाया गया, सारा घर भरा था, पर मेरे लिए सभी अपरिचित। यह तो मैं जानती ही थी कि इतने लोगों के बीच मे एक भी ऐसी नहीं जो मेरी सगी-सगी हो। जिसको मैं अपनी कह कर गले से लगा सकूं। एक तरह से मैं ही अब इस घर की मालकिन थी। उन आई हुई औरतों की खातिर मुझे करनी चाहिए थी, क्योंकि इस घर में सास-जेठानी, ननद-बुआ के नाम पर कोई भी तो नहीं थी। पर मैं गुम-सुम बैठी रही खोई-खोई सी, भूली-भूली सी। लाज के मारे न कहीं देखती थी, न किसी से बोलती थी। कहीं कुछ गलती न हो जाय, कोई ऐसी

हरकत न हो जाय, जो मेरी हँसी का कारण बने, इसलिए मैं आँखें बन्द किए बैठी रही। औरतें मेरा घूंघट पलट-पलट कर मेरा मुंह देख रही थी और मैं आँखे बन्द किये अपनी समाधि मे डूबी थी। थोड़ी देर मे धीरे-धीरे सभी औरतें चली गई। रह गई एक बूढी जो परिवार की ही थी और रिश्ते मे अजिया सास लगती थी। मेरी अपनी निज की सास तो थी नही, अत. मैंने उन्हें ही अपनी सास माना। वे भी ऐसी उदार कि मुझे उन्होने पराई बहू जाना ही नही। हर घडी मेरी खोज-खबर लेती रहती। कोई असुविधा न हो, कोई परेशानी न हो, इसका बराबर ध्यान रखती। हर काम को समझाती, बताती। इस गाँव के तौर-तरीके, रीति-रिवाज कैसे है ? इस सब का ज्ञान उन्होंने ही दिया। मुझे कभी भी अकेली होकर ऊबने का मौका नही दिया।

वे जब घर मे आते तो मैं घूंघट निकाल कर चुप खडी हो जाती। सहज ही उनके सामने होने का साहस न कर पाती। उनकी बातों का जवाब भी कम ही देती। मेरी लाज से उन्हें काफी परेशानी होती थी। मैं उनकी परेशानियों को समझती थी, पर सहज ही एकबारगी अपने को संकोच तथा लाज से मुक्त भी नही कर पा रही थी।

एक दिन उन्होंने कहा ही—"देखो इस घर मे कोई बडी-बूढी तो है नही, किस के लिए तुम इतनी लाज करती हो ? पुरुषो मे केवल मैं हूँ और औरतो मे तुम। मुझ से इस तरह लाज करते रहने से कैसे चलेगा ? अब यह तुम्हारा घर है। तुम्हें इस घर मे बडी-बूढी तथा नई-नवेली दोनो का फर्ज अदा करना पडेगा। कभी किसी चीज का संकोच मत करना। घर में जिस चीज की कमी हो या जिसकी जरूरत हो खुल कर कह दिया करो। मैं नही चाहता कि तुम किसी प्रकार की कमी महसूस करो।"—यह कहते हुए उन्होने पीठ पीछे से मेरी साडी खीच ली। मै मुंह फेर कर खडी थी। मेरा सिर खुल गया। मुझे एक झटका-सा लगा। पलट कर मै अपनी साडी ठीक करूँ कि उन्होने मेरा हाथ पकड लिया। मैं झिझकी, शरमाई, अपने को छुडाने की कोशिश की, पर विवश। उन्होने अपने बाहुपाश मे मुझे कस कर बाँध लिया। जाने मैं कैसे इतना कह पाई, छोडो कोई देख लेगा। वे विहँस पड़े। जूड़े से खुले बिखरे बालों को उन्होंने मेरे सारे मुंह

पर फैला दिया—"लो घटाओं में चाँद छिप गया, कोई न देख सकेगा।" कहते हुए उन्होंने बालों के झीने अवगुंठन में ही मेरे अधरों पर अपने अधर धर दिए और मैं अव्यक्त आह्लाद से धरी की धरी रह गई।

बाहुपाश ढीला हुआ। बालों के पीछे झटकते हुए मेरे कपोल अपने हाथों की अंजुरी में भर कर भाल की बिन्दी को चूमते हुए विहँस उठे—'पगली!'

मैं अपने को सँभाल कर संयत हुई तो देखा मेरी बिन्दिया का रंग उनके होंठों पर उतर आया है। मुझे हँसी आ गई।

"हँसी क्यों?"

उत्तर न देकर उनके होंठों पर अंगुली फेर कर दिखाने लगी।

"तो अभी छुड़ाए देता हूँ।" कह कर उन्होंने सहज ही अपने अधरों को फिर मेरे अधरों पर धर दिए।

उफ! इसी घर की इन दीवारों ने अपनी छत की छाँव तले मेरी ऐसी आमोद भरी दुनिया देखी थी। काश! ये कह पातीं तो आज इनसे ही मैं अपनी उन दिनों की कहानी सुनाने को कहती। न कहें, पर मूक गवाह तो हैं।

हम दो प्राणियों की वह दुनिया निराली थी। नया-नया घर बसा था, इसलिए खाने-पहनने की कोई कमी नहीं थी। इसके बावजूद एक बहुत बड़ी कमी थी, एक अव्यक्त कमी, एक अप्रत्यक्ष अभाव।

घर में अनाज बाजार से आता था। रोटी-दाल के अलावा गाँव में और भी बहुत सी चीजें होती हैं। उसकी भी मुझे कमी नहीं थी। हर मौसम की चीजें घर में पहुँच जाती थीं। कभी कोई आम-महुआ पहुँचा देता था, कोई हरे चने-मटर की फलियाँ भेज देता था। जिनके घर गाय-भैंस लगती थी, वे गाहे-बगाहे दही-छाछ भेज देते थे। यह सब पहुँचाने वालों की भावना चाहे जो रहती हो, पर ये चीजें सहज स्वीकार करना मुझे अच्छा न लगता। एकाध दिन की, एकाध चीज की, बात होती तो दूसरी बात थी, पर अक्सर उसे लेने में मेरा मन दुखता था। मेरे स्वाभिमान को ठेस लगती। मुझे ऐसा लगता जैसे मैं दया की पात्री हूँ। मुझमें एक ही भावना घर करने लगी—जैसे मैं अनाथ होऊँ, बेचारी होऊँ। मेरी इस स्थिति पर लोग तरस खाते हैं। किसी एहसान की भावना

से लाग ये चीजें मुझे नहीं दे रहे थे, पर मैं स्वय ही एहसान के भार से दबी जा रही थी। आई हुई चीज को लेने से बिल्कुल मना भी नहीं कर सकती थी। ऐसा करने पर देने वालों की निगाहों मे मैं घमडी हो जाती। वे सब इसमें मेरी ठमक देखते।

मैं अपने मन के सकोच को किसी से कह भी नही पाती थी। इस स्थिति में मैं अपने मे बडी परेशान थी। न लेते बनता था, न इनकार करते बनता था। मैं भी उन्हें कभी कुछ दे पाती तो इतनी परेशानी मुझे न होती, पर किसी को देने लायक मेरे पास अलभ्य चीज थी भी क्या ? हमेशा हाथ फैलाकर यामना बुरा नहीं था, पर हाथ बढ़ाकर कुछ देने को भी तो होता।

मेरी यह परेशानी धीरे-धीरे खुद हल हो गई। नयेपन मे आत्मीयता का जो ताजा मोह होता है, वह धीरे-धीरे पुराना होकर कम होता गया।—कौन रोज देता रहे?—लोगों की इस प्रवृत्ति से मुझे राहत मिली।

जब मैं ससुराल से लौटकर मायके गई तो मेरे साथ भी वही बात हुई जो अक्सर हर लडकी के साथ होती है। सखी-सहेलियाँ, चाची-ताइयाँ सभी मेरी ससुराल की बाते पूछने लगी। अपने से पहले ससुराल से लौटी हुई कितनो ही लडकियों को मैंने ससुराल की जी-भर बुराई करते सुना था। जब वे अपनी सास-ननद, जेठ-जेठानी के कटु व्यवहार की बाते सुनातीं तो मुझे लगता कि कैसी है वे सास-ननदे जो अपनी बहू को इस तरह ताडना देती है, बात-बात मे दुख देती है। पराये घर से आने वाली लडकी को अपना नहीं समझती।'

मेरी वे सहेलियाँ भी ससुराल का दुखडा बखान करते न थकती। वहाँ खाना कैसे बनता है। गृहस्थी मे किस तरह रोज कुछ न कुछ घटा ही रहता है? उन सब बातो को बताने मे वे बडा गर्व अनुभव करती।

पर ससुराल के बारे में वही सवाल जब मेरे सामने आए तो मुझे लगा कि अपनी सखियों की तरह से कुछ वैसी बातें करके मैं अच्छा न करूँगी। उस घर को अब मुझे अपना ही घर समझना चाहिए। पराये घर की भावना रखकर के मुंह खोलना ठीक न होगा। अपने घर का भेद देने से अभी भले ही वाह-वाही मिले, मगर बाद में तो जग-हँसाई की बात होगी। अपना घर कैसी ही गिरी हालत में क्यों न हो, पर है तो वह अपना ही घर. उसकी बुराई करने के माने है अपनी बुराई करना।

ईश्वर ने सयोग ही कुछ ऐसा बना दिया था कि सास-ननद के व्यवहार का सवाल ही नहीं उठता था। मेरी हम-उम्र सखियों ने जो पूछा उसे मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया। मेरा उत्तर सुनकर उन्हें कुछ ईर्ष्या ही हुई। कहने लगी—"बहन, तू ही भली। तुझ को सताने वाला और डाहने वाला तो कोई नहीं। हम सब पर तो सामे रात-दिन 'खांव-खांव' कर छाती पर चढी रहती है। ननदों की ठसक और भी भारी रहती है। उनके नखरे न पूरे हों तो देखो तमाशा! कोई मुँह भर कर प्रेम से बोलना तो जानता ही नहीं।'

सास-ननद के व्यवहार की कटु बातें मैं सुनती भले ही, पर मेरे सास-ननद नहीं है, यह अभाव सदा मुझे काँटे-सा चुभता। यह सब सुनने के बावजूद मेरे मन में हमेशा यही होता—काश! मेरी भी सास होती, मेरी भी ननद होती।

मेरी बातों का यकीन माँ को सहज न हुआ। वह मुझसे बार-बार यही पूछती—"बिटिया! जब खेती-बारी ही नहीं, तो गृहस्थी कैसे चलती है? खाने-पीने को अनाज कहाँ से आता है?"

मैं झल्लाकर उत्तर देती—"माँ एक बार नहीं, हजार बार कह चुकी कि मुझे कुछ नहीं पता कि कहाँ से आता है, कैसे चलता है? मैं तो जिस घड़े में हाथ डालती हूँ, वह खाली नहीं मिलता। तुझे विश्वास न हो तो जाकर अपनी आँख से देख आ। रोज-रोज यही पूछकर मेरा सिर न खाया कर।"

माँ हँसती—"बावरी बेटी! मैं तेरी ससुराल जाऊँगी?"

"तो और क्या करेगी? जब तुझे मेरी बातों का विश्वास ही नहीं तो

वहाँ जाकर खुद देखना, बल्कि रह कर परखना भी पड़ेगा।" गम्भीरता से कही गई मेरी इस बात को सुनकर माँ का चेहरा खिल गया। मुझे ऐसा लगा कि उसके मन में विवाह के पहले से जो एक काँटा था, वह मेरी बातों से निकल गया। उसकी पीड़ा दूर हो गई।

मायके से लौटकर जब मैं फिर ससुराल आई तो पहले जैसा क्रम चलने लगा। पर मैं साफ देख रही थी कि यह सब ऐसे नहीं चलेगा। मैं नई-नई इस घर में आई हूँ। 'उन्हें' भी मुझ पर अपना प्रभाव डालने का जोश है। पर यह गृहस्थी की गाड़ी जोश से थोड़े दिन चलती है। सब दिन चलती रहने के लिए अटूट होश की जरूरत है।

मैं इसी दुविधा में पड़ा रोज सोचा करती थी कि क्या किया जाय? हमारी गृहस्थी किस तरह स्थायी बसे। सचमुच की आदर्श गृहस्थी जैसी गाँव में होती है वैसी हमारी गृहस्थी हो। मैं इस चिन्ता में थी कि एक दिन उन्होंने एक नया प्रस्ताव सामने रखा।

बोले—"सुन रही हो। नैहर-वैहर तो खूब घूम आई। अब चलो कुछ दिन मेरे साथ रहो।"

मैं भौंचक्की-सी उनका मुँह देखने लगी।

उन्होंने फिर कहा—"इस तरह मेरा मुँह क्या देखती हो। ठीक ही तो कह रहा हूँ। क्या रखा है यहाँ इस निपट देहात में? डह-डह कर बैल की तरह मरने वाली बात है। यहाँ पेट भर खाने को न तो अन्न मिलता है और न पहनने को तन पर वस्त्र।"

"तो कहाँ चलना होगा तुम्हारे साथ?" मैंने आश्चर्य तथा कौतूहल से पूछा—"क्या कहीं और भी घर है?"

"हाँ घर है, तभी तो कह रहा हूँ। किराया देता हूँ, कोई तमाशा थोड़े ही है।" ऐसा कहकर वे कुछ गर्व अनुभव कर रहे थे, ऐसा मुझे लगा। साथ ही हँस भी पड़े।

मैं बोली—"अच्छा जी, मतलब यह है कि किराये के मकान में चलना होगा। अपना कहने को यह बचा-खुचा जो घर है, इससे भी हाथ धोना होगा।"

उनकी गम्भीरता मिटी नहीं, उसी मुद्रा में बोले—"देखो, यह हँसने

की बात नहीं। जिस ढंग से तुम इस बात को ले रही हो उस भावना से मत लो। तुमसे कुछ छिपा तो नहीं। तुमसे असलियत छिपाने से लाभ भी क्या। क्योंकि यह सब कुछ जितना मेरा है उतना तुम्हारा भी तो है। यह तो तुम्हें पता ही है कि यहाँ इस गाँव में बपौती के नाम पर मेरा कुछ भी नहीं। कहने को इस घर की दस-बीस हाथ जगह और देखने को यह घर भर है। घर की हालत तो तुम देख ही रही हो, यह तो उल्लुओं और चमगादड़ों के डेरे लायक रह गया है। आकाश की इस अँधेरी छत पर सफ़ेद-सफ़ेद तारे देख रही हो न, इतने ही सितारे दिन में सूरज अपनी किरण के साथ इस खपरैल में जगह जगह टाँक देता है। पानी की एक भी बूँद बाहर नहीं जाती। अपनी छोड़ो, जिनका यहाँ सब कुछ है, जो बाप-दादों की पुश्तैनी जायदाद लिए बैठे हैं, वे ही कौन बहुत सुखी हैं। केवल कहने को ही सब कुछ है। दस पाँच रुपया माल-गुजारी के लिए तालुकेदार की कुड़की हर साल आती है। जब देखो तब खेत में बेदखल हुए बैठे हैं। बित्ता भर वस्त्र तन पर चढ़ना पर्वत हो जाता है। इस हालत में यहाँ रहकर क्या करेंगे? बम्बई में अपनी नौकरी लगी है। वहाँ खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, घूमने-फिरने सब के मज़े हैं। बम्बई हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा और सबसे सुन्दर शहर है। वहाँ चढ़ने को मोटर, ट्राम, रेल। घूमने को खुशबूदार फूलों से भरे बड़े-बड़े बगीचे, समुद्र का किनारा। रहने को पक्का मकान। पहनने को बढ़िया कपड़े। मतलब हर तरह का सुख आराम और सुविधा वहाँ है।"

किसी का मन डिगाने के लिए ये सुख के प्रलोभन कुछ कम नहीं। आदमी सहज ही ऐसा सुख छोड़ना नहीं चाहता। फिर उस परिस्थिति में, जब कि सामने अन्धकार और अभाव ही अभाव हो तो यह सब और भी सुखद लगता है।

मेरी हँसी लुप्त हो गई। मुझमें न जाने कहाँ की गम्भीरता आ गई। मैंने कहा—"अपनी कह चुके हो तो मेरी भी सुन लो। यह सुख सच में बहुत बड़ी चीज है, फिर हम तुम जैसे जवान उम्र वालों के लिए तो और भी बड़ी चीज है। इसके बावजूद यह सुख वह नहीं जिसे हम अपने मन का सुख कह सकें। इस सुख में दिखावा अधिक है। दुनिया इस

दिखावे में बुरी तरह उलझी है। तन के सुख के लिए लोग बहुत अधिक कीमत अदा कर रहे है। तन का सुख कुछ और चीज है, पर मन का सुख !—मन के सुख की कोई तुलना नही। मुझे यह सब ऊपरी सुख, दिखावे का सुख नही चाहिए। मुझे मन का सुख चाहिए। ऐसा सुख जिसे मैं अपना कह सकूं। मै खाना-बदोश की लडकी नही हूँ जो सारी जिन्दगी इधर-उधर भटकती फिरूँ और कल एक मौका यह आये कि जब कोई यह पूछे कि कहाँ के रहने वाले हो ? तो भकुआ की तरह मुँह बना कर रह जायें। नौकरी हमें चाहे जहाँ भटकाती रहे, इससे अच्छा होगा कि हम को नौकरी अपने काबू मे कर लें। अपने घर मे भूखी भली, पर सुख के लिए इस घर को छोड कर चलूं, यह कैसे होगा ? मैं घर बसाने आई हूँ उजाडने नही। बनाने आई हूँ, बिगाडने नही। जो उजड़ रहा है उसे बसाऊँगी, जो बिगड रहा है उसे बनाऊँगी। यहाँ के हर दुख मे मुझे सुख है। मैं कही भी नही जाऊँगी।"

मेरी दृढता देखकर वे भौचक्के हो गए।

राम सीता को जंगल का भय बताकर साथ ले जाने से मना कर रहे थे। वे मुझे शहर का सुख दिखाकर साथ चलने को जोर दे रहे थे। राम की सीता नही मानी, गई ही। मैं भी नही मानी, नही गई।

"तो क्या तुम्हारा पक्का इरादा यही रहने का है ?"—उन्होने पूछा,

"शक क्यों हो रहा है ?"—मैंने उसी दृढता से जवाब दिया।

"यही कि आखिर यहाँ रहोगी कैसे ? अकेली, अनजान, असहाय ! मुझे तो बम्बई जाना ही होगा, बिना वहाँ गये मैं यहाँ क्या कर सकूंगा ?" उनके स्वर में निराशा थी।

"मेरी चिन्ता मत करो। अब मैं जैसा कहूँ वैसा करो। भगवान ने जो समय हम पर डाला है उससे लड़ना होगा। अपने को इस गिरी हालत से उठाना होगा। सुख भोगने के लिए इसे बिलकुल त्याग कर भाग चलने से काम नहीं चलेगा।"—कहकर मैंने उनकी परेशानी कुछ हद तक हलकी की।

शायद उन्हे लगा कि मेरी बात सही हो। पर उस उम्र मे मेरी बुजुर्गो जैसी बातें सुनकर उन्हे आश्चर्य भी कम नहीं हुआ, ऐसा उनकी मुद्रा ने

लगता था। जब आदमी के अपने मन की बात कही जाती है तो वह बड़ी उत्सुकता मे उसमे रस लेता है। अपना घर किसे प्यारा नहीं होता? सहज ही अपनी जननी-जन्मभूमि को त्याग कर कौन सुदूर देश मे जाना पसन्द करेगा, पर मजबूरी जो न कराये थोडा। दुख पर दुख आते रहने से इस घर के प्रति उनका जो मोह था, इस गाँव के साथ उनका जो नाता था, वह सब खो गया। बल्कि यो कहे कि किसी प्रकार का साहस तथा प्रोत्साहन न मिलने से सो गया था। मेरी बातों ने उनके अन्दर वह जन्म-जात सोई ममता जगाई। वे गहरे सोच मे पड गए। एक अव्यक्त आनन्द की कल्पना उनके मन मे होने लगी, जिसकी झलक उनके चेहरे पर भी आई। मै चुप बैठी उनके सारे भाव देख रही थी।

उन्होंने एक बार अपने समूचे घर को निहारा। आँगन से ही दरवाजे के उस नीम के पेड को देखा, जिसकी ऊँची टहनियाँ हवा के झोंके मे आनन्द मे झूम रही थी। उनके मन में भी शायद वैसी ही हिलोर आई। हँस कर बोले—

"सच है, अपना घर तो अपना ही है, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो। मुझे जो चिन्ता हो रही है वह यह कि यहाँ इस टूटे-फूटे घर के सिवा रोजी-रोटी का कुछ भी तो आसरा नही। यहाँ रहकर तो खाने के भी लाले पड गये जायेंगे, तुम कर क्या सकोगी?"

शायद वे कुछ और निराशा-भरी बातें करते, पर मैंने बीच मे बात काटी—"आदमी क्या नहीं कर सकता। इस दुनिया मे जो कुछ किया जा रहा है यह सब आदमी ही तो कर रहा है। थोडी हिम्मत की जरूरत है। चल पड़ने से रास्ता अपने आप बनता जाता है। थोड़ा सा खेत तथा दो बैल का जुगाड हो जाय तो अपनी गाड़ी चल पड़े। हमारे खेत जिन्होंने ले रखे हैं क्या वे अपना पैसा लेकर छोड न देंगे?"

"इस तरह आसानी से कौन छोड़ता है? हम उनसे कह भी तो नहीं सकते। जो चीज एक बार बेच दी गई, वह हम वापस ले भी तो नहीं सकते। वे क्यों चाहेंगे कि हम यहाँ फिर से बसें!"

"मुफ्त छोड़ने को तो नहीं कह रही हूँ। जो पैसा उन्होंने दिया हो वह ले लें। ब्याज के नीचे बहुत दिन जोते-बोए। हम कोई पराये तो हैं

नही कि उन्हे यह सब न पसन्द आये। अपने परिवार की बढोत्तरी किसे अच्छी न लगेगी ?"

"हम अब परिवार के नही रहे। पट्टीदार हो गए है। पट्टीदारी की स्पर्धा बुरी होती है। यहाँ भाई-चारे की भावना नही, बल्कि प्रतिद्वन्द्विता की भावना होती है। हमारी यह बात सुनकर ही उनके माथे मे बल पड जायेंगे।"—उन्होंने जब यह उत्तर दिया तो मैं समझ गई कि वे जाना नही चाहते। जबान खाली जाना पसन्द न था।

मुझे तो एक सनक सवार थी। मैं यही सोचकर सहज ही बैठने वाली नही थी। काम बने या न बने, पर कोशिश करने से हम क्यों चूकें, ऐसा मेरा विचार था। मैंने कहा—"जाओ तो सही। बात करने मे क्या बुराई है? न मानें तो न सही। हम भी तो परख लेंगे कि कुल-गोत्र के लोग हमे किस तरह अपनाते है। और हाँ, देखो पैसों की चिन्ता मत करना। मेरे जेवर किस दिन काम आयेंगे ?"

उन्होंने आश्चर्य से मेरी ओर देखा। मुख्य बात को तो उतनी गभीरता से नहीं लिया, पर जेवर की बात पकड़ ली। इसी को लक्ष्य कर बात का प्रसंग ही बदल दिया। औचक आश्चर्य से बोले—"क्या तुम जेवर बेच दोगी ?"

"हर्ज क्या है ?" मैंने सहज भाव मे कहा।

"यही, कि औरतें तो जेवर पाने के लिए न जाने क्या-क्या कर [illegible]ती है ? न जाने कितने घरों में केवल इसी को लेकर झगड़ा मचा रहता है। इस देश की तो बूढी औरतें भी बँदरिया के मरे बच्चे की तरह गहनों को छाती मे चिपकाकर डोलती फिरती है, और तुम अभी इसी उमर में ही इन गहनों को बेचने की बात करती हो। सोचो सही, लोग क्या कहेंगे ? यही न कि ऐसा कपूत निकला कि बीवी के गहने ही बेच-खा गया। तुम्हारे मायके वाले क्या सोचेंगे ? जब किसी तिथि-त्योहार, ब्याह-शादी पर गाँव की नई-नवेली, बडी-बूढी औरतें 'झम्म-झम्म' करती हुई निकलेंगी, उस समय तुम्हारे मन पर क्या बीतेगी ? तुम कैसे उनके बीच मान से चल सकोगी ? सब तुम्हारे बारे मे क्या सोचेंगी ? उनकी निगाहों की उपेक्षा तुम कैसे बरदाश्त करोगी ?"—वे भावना में ज्यादा ही बह गये, ऐसा मुझे महसूस हुआ।

मैंने सहज भाव से कहा—"इसमें बुराई की क्या बात है ? आदमी वक्त जरूरत पर अपनी ही चीजें काम में लाता है। दूसरे के सामने हाथ फैलाने से तो यह अच्छा। मुझे गहनों का कोई शौक भी नहीं है। अब तक कितने तिथि-त्योहारों पर मैं यह सब झाँम-झाँम पहनकर निकली हूँ। जैसे तुम्हारे सामने बैठी हूँ, बस ऐसे ही तो खास मौकों पर भी रहती हूँ। मुझे तो कभी किसी की निगाहों में कुछ न लगा। फिर किसी को बुरा लगे लगता रहे। मेरे काका कहते थे—'दुनिया में हजार मुँह, हजार बातें। सब सुनकर चलने से तो जिन्दगी में एक कदम चलना भी दूभर हो जाय। जिसमें किसी दूसरे को हानि न पहुँचे और अपना भला हो, आदमी को वही करना चाहिए।' —हमें अपना काम देखना है या कि दुनिया की बातें सुननी हैं।"

"अच्छी बात है। तुम्हारी ही सही। मैं बात करूँगा। वैसे मुझे विश्वास नहीं कि काम बने।"—कहकर वे उठ गये।

मेरा मन आनन्द से भर गया। मुझे आशा होने लगी कि भगवान ने जब ऐसा सोचने की प्रेरणा दी है तो काम भी वे अवश्य बनायेंगे। हमारे घर की यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रहेगी। अपनी लगन से हम इसे बदल देंगे। गाँव के अन्य लोगों की तरह हम भी उनके बीच उन जैसी ही शान से रह सकें, ऐसा करने के लिए मेरे मन में जो एक छटपटाहट उठी थी, उसका समाधान होता दिखाई दिया।

आदमी के मन की बात इस तरह सोचते ही सहज मूर्त्त हो जाय तो फिर जिन्दगी की कशमकश ही क्या रही। सोचना तो सहज है, पर उसे मूर्त्त करने के लिए, वैसा पाने के लिए, जब हम चलते हैं तो कठिनाइयों और बाधाओं का पता चलता है। जो ठोकर खाकर मुड न जाय वही लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

उन्होंने उधर चर्चा चलाई। पण्डित रामजियावन ने ही, जो रिश्ते में उनके चाचा लगते थे, हमारे खेत खरीदे थे। उनकी बात सुनकर चाचा हँसे। जवाब दिया—"रेहन होता तो तुम्हारा कहना अच्छा लगता, पर यहाँ बयनामा भी वापस हुआ है?"

उन्होंने सहज ही उत्तर दिया—"मैं कानूनी बात थोड़े करने आया

हूँ। यह तो भाई-चारे की बात है। मैं भी तो आपके परिवार का हूँ अपना सुख-दुख आपसे नही कहूँगा तो किससे कहूँगा। अब मै यहाँ रहना चाहूँ तो इसके लिए कोई सहारा तो चाहिए ही। आपके पास तो अपना ही बहुत है। मेरे खेत पैसे लेकर वापस कर देते तो मैं भी आप सबके बीच मे रह लेता, वर्ना ऐसे ही भटकता रहूँगा और एक दिन यह गाँव सदा के लिए भूल जायेगा।"

"यह बात तो है भइया! यह तो तुम्हारे काका-दादा को सोचना चाहिए था, जो तुम्हें कही खड़े होने की भी जगह न छोड़ गये। हमारे खेत है तो परिवार भी तो वडा है। इतनों को ही नही पूरा पड़ता। कल जब लोग और बढ़ेंगे तो वे क्या करेंगे? तुम्हे खेत लेना ही हो तो बहुत मिल जायेंगे। यहाँ न सही और किसी गाँव मे सही?"—चाचा सहानुभूति के स्वर में बोल रहे थे।

निराश होकर उन्होंने अन्तिम बात कही—"सो तो है ही। वैसे तो सारा देश पड़ा है। खेत लेना ही हो तो देश के किसी कोने मे मिल सकता है। जब मुझे बाप-दादों का पुश्तैनी गाँव छोड़ना ही पड़ा तो फिर पराया गाँव या देश का कोई कोना सब बराबर है।"—कहकर वे चले आये।

मैं आशा भरी उनके पास गई यह जानने को कि क्या हुआ, तो बोले—"बात नही बनी। काम भी नहीं हुआ और उन सबके मन में भी खटक गया। मैंने तुमसे पहले ही कहा था, पर तुम नहीं मानी। तुम औरतों की बुद्धि गाँव के इस प्रपच को नही समझ सकती। ऐसे ही नही होते ये लोग तो काका से जमीन बय ही क्यों कराते? यह भी जानते है कि सबका दिन एक जैसा नही बीतता। बिगड़े दिन फिर बनते है, बनी हवा बिगड जाती है। दुनिया के इस चक्कर में सब आते रहते है। इसीलिए मैं तुम्हे कहता हूँ कि यह सब मोह-माया छोड़ो। चलो, हम अपनी दुनिया अलग बसायेंगे। जीने-खाने की ही तो बात है। जहाँ रहेंगे वहीं इन्तजाम कर लेंगे। कौन यहाँ बैठ कर झगड़ा मोल ले और फिर इस जंजाल मे उलझ कर कहीं के न रहें।"

उनकी यह बात मेरे मन में न उतरी। यह तो पलायन वाली बात

हुई। उनके इस प्रकार निराश लौट आने से मुझे बड़ा दुःख हुआ, पर उनकी तरह उस दुःख से मुझे निराशा नहीं हुई। बल्कि मन में संघर्ष करने के भाव जगे। मैंने कहा—"इस तरह मत सोचो। निराश होकर भागने से काम नहीं चलेगा। जब आदमी किसी चीज से डर कर भागता है तो वह विपद और जोर से गले पड़ जाती है। मैं यहीं इसी गाँव में रहूँगी अपने सास-ससुर के माथे का यह कलंक—कि इनके बाप-दादा अपना सब बेच-खा गए—धो कर रहूँगी। अपनी पुश्तैनी इज्जत हमें इन सब के बीच वापस लानी ही होगी।"

जमाना जमींदारी का था। हर ताल्लुकेदार किसी की भी जमीन को जब चाहे लेकर बेदखल कर देता था तथा नजराना लेकर दूसरे को दे देता था। अपने खेत पर अपना पुश्तैनी हक नहीं था।

संयोग ही तो था। चाचा रामजियावन भी समय पर लगान अदा न कर पाने के कारण अपने पाँच बीघे खालसा खेत से बेदखल हो गये। बेदखल तो हो गये, पर इसके लिए उन्होंने कोई परेशानी न महसूस की। क्योंकि उनका यह ख्याल था कि उनके खेत का नजराना देकर कौन अपने नाम ताल्लुकेदार से उनका खेत लेकर उनसे बैर ठान कर अपना हल चलाना चाहेगा। लगान आज नहीं तो कल अदा कर ही दूँगा।

मुझे एक जिद हो गई थी खेत की। मेरी आँखों में यही चित्र घूमता रहता कि मेरा अपना खेत हो, उसमें मेरा हल चल रहा हो। वह हरे-भरे अनाज के पौधों से लहलहा रहा हो, उसमें पकी हुई गेहूँ-जौ की बालें सोने-सी चमक रही हों।

बेदखली की बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि भगवान ने मेरी सुन ली। मौका उन्होंने देना था, वह दे दिया। अब लेना हमारा काम है। मैंने उन्हें एकान्त में बुला कर कहा—"सुन रही हैं कि चाचा पचबिगही पटिया में बेदखल हो गये हैं?"

उन्होंने ऐसी रुखाई से उत्तर दिया जैसे यह बहुत बड़ी बात न हो। बोले—"खालसा तो है ही। कौन-सी काबिज-दरमियानी है। तीन साल पहले उन्होंने भी नजराना देकर लिया था।"

मैंने उत्सुकता से कहा—"मौका अच्छा है। खेत भी गोयड़हा बड़े मौके का है। ताल्लुकेदार साहब से मिलो। कोई न कोई तो उसे लेगा ही फिर हम ही क्यों न ले लें। जमीन आसमान से तो आयेगी नहीं, मिलेगी तो इसी तरह।"

वे गम्भीर होकर बोले—"ले तो लूँ, पर लड़ाई हुए बिना न रहेगी। सही-सलामत अपना हल चलने पायेगा उस खेत में? यही मुझे शंका है। पहले सिर फूटेगा फिर धरती फटेगी। अभी जब किसी ने नहीं लिया है, तभी वे कह रहे हैं कि देखता हूँ कौन माई का लाल इस पटिया के लिए नजराना देता है? इसमें और किसी का फार धँसे, इसका मतलब वह मेरी छाती में धँसेगा। ऐसी हालत में उसे लेकर झगड़ा करना ठीक नहीं।"

उनका भय मैं समझ गई। वे वैर मोल लेना नहीं चाहते थे, पर सिधाई से उन्होंने अब तक कितना घी निकाला था, यह भी मैं देख चुकी थी। खेत के लिए वैर लेने वाली कोई बात नहीं थी, पर इसे कोई वैर मान ही ले तो क्या उपाय था। कौन-सी वह उनकी पुश्तैनी जमीन थी जिसके लिए इतना मलाल था। हमारी तो बाप-दादों की पुश्तैनी जमीन थी। उसमें उनका हल चलता है तो उन्हें हमारी छाती नहीं दिखाई देती। अपना सबको प्यारा होता है। मैं इस मौके को चूकने नहीं देना चाहती थी। मुझमें हर खतरा उठाने की सनक सवार हो गई थी। बिना खतरा मोल लिए यह गाड़ी न चलेगी, यह मैं पक्का समझ गई थी।

मैंने उनके अभिमान को जगाया—'इस पराई खालसा जमीन में वे अपनी छाती दिखा रहे हैं। हमारे पुश्तैनी खेत में उनका हल चलता है तो उसमें उनको हमारी छाती नहीं दिखाई देती? सबको अपनी छाती और अपना मान प्यारा होता है। रुपया देकर अपने खेत वापस लेने गये तो थे? कैसा टका-सा जवाब दे दिया था। आज तुम उनके वैर की बात कर रहे हो। सिर फटना इतना आसान नहीं है। तुम खेतों की लिखा-पढ़ी कराकर जाओ बम्बई, निपटूँगी मैं। जब तक अपनी खेती-बारी नहीं हो

हुई। उनके इस प्रकार निराश लौट आने से मुझे बड़ा दुःख हुआ, पर उनकी तरह उस दुःख से मुझे निराशा नहीं हुई। बल्कि मन में संघर्ष करने के भाव जगे। मैंने कहा—"इस तरह मत सोचो। निराश होकर भागने से काम नहीं चलेगा। जब आदमी किसी चीज से डर कर भागता है तो वह विपद और जोर से गले पड़ जाती है। मैं यहीं इसी गांव में रहूँगी अपने सास-सुसर के माथे का यह कलंक—कि इनके बाप-दादा अपना सब बेच-खा गए—धो कर रहूँगी। अपनी पुश्तैनी इज्जत हमें इन सब के बीच वापस लानी ही होगी।"

जमाना जमींदारी का था। हर ताल्लुकेदार किसी की भी जमीन को जब चाहे लेकर बेदखल कर देता था तथा नजराना लेकर दूसरे को दे देता था। अपने खेत पर अपना पुश्तैनी हक नहीं था।

संयोग ही तो था। चाचा रामजियावन भी समय पर लगान अदा न कर पाने के कारण अपने पाँच बीघे खालसा खेत से बेदखल हो गये। बेदखल तो हो गये, पर इसके लिए उन्होंने कोई परेशानी न महसूस की। क्योंकि उनका यह ख्याल था कि उनके खेत का नजराना देकर कौन अपने नाम तालुकेदार से उनका खेत लेकर उनसे बैर ठान कर अपना हल चलाना चाहेगा। लगान आज नहीं तो कल अदा कर ही दूँगा।

मुझे एक जिद हो गई थी खेत की। मेरी आँखों में यही चित्र घूमता रहता कि मेरा अपना खेत हो, उसमें मेरा हल चल रहा हो। वह हरे-भरे अनाज के पौधों से लहलहा रहा हो, उसमें पकी हुई गेहूँ-जौ की बालें सोने-सी दमक रही हों।

बेदखली की बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि भगवान ने मेरी सुन ली। मौका उन्होंने देना था, वह दे दिया। अब लेना हमारा काम है। मैंने उन्हें एकांत में बुला कर कहा—"सुन रही हूँ कि चाचा पचबिगही पटिया से बेदखल हो गये हैं?"

उन्होने ऐसी रुखाई से उत्तर दिया जैसे यह बहुत बडी बात न हो। बोले—"खालसा तो है ही। कौन-सी काविज-दरमियानी है। तीन साल पहले उन्होने भी नजराना देकर लिया था।"

मैंने उत्सुकता से कहा—"मौका अच्छा है। खेत भी गोयडहा बडे मौके का है। ताल्लुकेदार साहब से मिलो। कोई न कोई तो उसे लेगा ही फिर हम ही क्यो न ले लें। जमीन आसमान से तो आयेगी नही, मिलेगी तो इसी तरह।"

वे गम्भीर होकर बोले—"ले तो लूँ, पर लडाई हुए बिना न रहेगी। सही-सलामत अपना हल चलने पायेगा उस खेत मे? यही मुझे शका है। पहले सिर फूटेगा फिर धरती फटेगी। अभी जब किसी ने नही लिया है, तभी वे कह रहे है कि देखता हूँ कौन माई का लाल इस पटिया के लिए नजराना देता है? इसमे और किसी का फार धँसे, इसका मतलब वह मेरी छाती मे धँसेगा। ऐसी हालत में उसे लेकर झगडा करना ठीक नही।"

उनका भय मैं समझ गई। वे वैर मोल लेना नही चाहते थे, पर मिधाई से उन्होने अब तक कितना घी निकाला था, यह भी मैं देख चुकी थी। खेत के लिए वैर लेने वाली कोई वात नही थी, पर इसे कोई वैर मान ही ले तो क्या उपाय था। कौन-सी वह उनकी पुश्तैनी जमीन थी जिसके लिए इतना मलाल था। हमारी तो बाप-दादो की पुश्तैनी जमीन थी। उसमे उनका हल चलता है तो उन्हे हमारी छाती नही दिखाई देती। अपना सबको प्यारा होता है। मै इस मौके को चूकने नही देना चाहती थी। मुझमें हर खतरा उठाने की सनक सवार हो गई थी। बिना खतरा मोल लिए यह गाडी न चलेगी, यह मै पक्का समझ गई थी।

मैंने उनके अभिमान को जगाया—'इस पराई खालसा जमीन मे वे अपनी छाती दिखा रहे है। हमारे पुश्तैनी खेत में उनका हल चलता है तो उसमे उनको हमारी छाती नही दिखाई देती? सबको अपनी छाती और अपना मान प्यारा होता है। रुपया देकर अपने खेत वापस लेने गये तो थे? कैसा टका-सा जवाब दे दिया था। आज तुम उनके वैर की बात कर रहे हो। सिर फटना इतना आसान नही है। तुम खेतों की लिखा-पढ़ी कराकर जाओ बम्बई, निपटूँगी मैं। जब तक अपनी खेती-बारी नही हो

जाती तब तक रोटी के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। एकाध साल में ही अपना बम्बई यहीं हो जायेगा। तुम जाकर तालुकदार साहब से बातचीत करके पक्की करो।"

वे हिचकिचाते ही रहे, पर मैंने उन्हें ठेल-ठाल कर काम करा ही लिया। अपना पेट भर कर तालुकदार ने खेत हमारे नाम कर दिया। मेरी जिन्दगी की एक बहुत बडी साध पूरी हो गई।

कितना हो-हल्ला मचा, कितना उत्पात मचा, कितनी धमकियाँ मिली, कितने ताने और लाछन सहे? आज उन सबको सोचने से ही हैरानी हो रही है कि मैंने कैसे वह तूफान पार किया, वह विरोध और दुश्मनी मैं किस बल से झेल गई? सोचती हूँ, तो लगता है कि वह बल और कुछ नही, केवल मेरे संकल्प का बल था।

वह तो बम्बई चले गए। रह गई मैं और मेरी वह अजिया सास जो वक्त-बे-वक्त मेरे लिए बहुत बडी सहारा थीं। बैलों को चारा-पानी देने तथा बाहरी सारे काम की देखभाल के लिए वे घीसू को कर गए। घीसू ने जिस लगन और वफादारी से अपना फर्ज निभाया वह सचमुच एक बहुत बडी चीज थी। चाचा के विरोधों का मुकाबला उसने जिस दृढ़ता से किया उसी का फल था कि मैं नहीं घबराई।

इसी पटिया में जब पहली बार घिसियावन हल लेकर गया तो कितना उत्पात मचा। पण्डित बौखला-से गये थे। घिसियावन को जान से मार डालने तक की धमकी दे रहे थे। कोशिश यही थी कि हल न चलने पाये। खेत ले तो लिया, पर रहेगा परती ही। घिसियावन उनकी किसी धमकी परवाह न कर बोला—"जिसका नमक खाता हूँ उसका जान देकर भी अदा करूँगा।"

वह हल-बैल लेकर खेत में पहुँचा। पण्डित खूब उबले, खूब लाठी फटकारी, बडे पैंतरे बदले, पर घीसू नहीं डिगा। बिना किसी उत्तेजना से बोला —"मैं खेत जोतता हूँ। तुम मारो, बैलों को खेत से भगा दो हल छीन लो। मेरी टाँग पकडकर खेत से घसीट कर बाहर कर दो।"

पर चाचा ऐसा करने का साहस नहीं कर पाते थे। इसलिए नहीं कि घिसियावन बलवान था या उसके पीछे बहुत बडा बल था। असल में

उन्हें भय था तो ताल्लुकेदार का। उस खेत के बारे में झगडा करने का मतलब ताल्लुकेदार से झगड़ा करना था। ताल्लुकेदार से झगडने से स्पष्ट था, पानी में रहकर मगर से वैर। बाहिरी डाट-फटकार से आगे बढकर वे खेत ने कदम रख अपने विरोध को प्रत्यक्ष कर दिखाने का साहस न कर सके।

घिसियावन ने हराई घुमाई और धरती खिलखिला कर हँस पडी।

चाचा का जब यह दाँव खाली गया तो उन्होंने दूसरा खेला। गोत्र-वध की दुश्मनी उन्होंने ठान ली। दरवाजे पर आना-जाना छोड दिया। हाथ का पानी पीना छोड दिया। न जाने कितनी उलटी-सीधी बातें गाँव और बिरादरी में करते थे। मैं सब सुनती थी, समझती थी, पर मैंने कभी शिकायत नहीं की। सोचा, ज्यादा पूछ-ताछ करने में विवाद ही बढेगा। उनका अपना क्रोध है, भडक रहे हैं। सब दिन ऐसे ही नहीं रहेगा। कुछ दिनों में शांत हो जाने पर सब ठीक हो जायेगा।

अनाज उगा और सिंचाई का वक्त आया तो चाचा ने बदला लिया। चलता हुआ पुर* छुडा दिया। नार-मोट खोलकर बाहर फेंक दिया। बैलों को दो डंडे लगाकर खदेड दिया। घिसियावन चुपचाप चला आया। मैंने पूछा, "क्या हुआ ?" तो बोला—"मालकिन, खेत अपना था तो मैं भी न हटा, वे फडफडाते ही रहे। पर कुआँ उनका अपना है, किसी को पानी ले जाने दे या मना कर दे, यह उनकी मरजी है। हजार बातें कही हैं। गालियों से मेरे पुरखों तक का उद्धार कर दिया। घर फूँक देने को कहा। टाँग तोड देने की धमकी दी। मैं सब सुनता, सहता रहा। जब नार-मोट ही फेंक दिया तो सब कुछ लेकर चुपचाप चला आया।"

मैं सोच में पड गई। पर सोच में पडकर बैठे रहने से तो काम नहीं चलता। मैंने कहा—"घिसियावन ! क्या सब मेहनत अकारथ चली जायेगी, सब किया-कराया यों धरा रह जायेगा ? यह खेत क्या पानी के बिना सूख जायेगा ?"

---

*खेत सींचने के लिए कुएँ से पानी निकालने की प्रणाली।

उसकी निराशा मुझसे भी ज्यादा गहरी थी। बोला—"जैसा हुकुम दो मालकिन ! मैं तो सब तरह से तैयार बैठा हूँ।"

"हुकुम लड़ाई-झगड़े का नहीं दे रही हूँ रे ! यह तो बता कि खेत सींचने का कोई इन्तजाम हो सकता है या नहीं"—मैं राह चाहती थी।

"पुरखों के जमाने में यह खेत इसी कुएँ से सींचा जाता रहा है। आज नया इन्तजाम क्या बताऊँ ?"—उसके कहने का ढंग ऐसा था जैसे अन्य कोई मार्ग नहीं। चुप होकर बैठने के सिवा और कोई चारा नहीं।

काम को अधूरा छोड़कर बैठ जाने का मेरा स्वभाव नहीं था। किसी काम का निश्चय होने पर हजार रास्ते निकल आते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। दृढ़ स्वर में बोली—"इन्तजाम तो हमें करना ही होगा। चाहे जैसे और जहाँ से। इस लहलहाती खेती को ऐसे ही कैसे सूखने दूँ ? आस-पास के किसी भी ताल-तिलाई या कुएँ से पानी खेत तक लाने का कोई रास्ता नहीं निकल सकता क्या ? ओखली में सिर डाला तो मूसलों का क्या डर !"

घिसियावन को बल मिला—"कोस भर से पानी लाना पड़ेगा।"

मुझे सहारा मिला—"चार कोस से क्यों न आए। हर कोशिश से खेत सींचो। मैं सबकी मेहनत समझ लूँगी। मजदूरी से सब को खुश कर दूँगी। खेत सींचा ही जाना चाहिए।"

आदमी आवेश में बड़े-बड़े असाध्य काम कर डालता है। खेत सींचा गया। लोगों ने हमारी लगन और साहस को देखा। हमारी सफलता पर चाचा कट कर रह गए। उनकी योजना सफल न हुई। फसल गह-गहा कर लहलहाई और जौ, गेहूँ की बालें सोने के झुमकों की तरह खेतों में झूम उठीं। सरसों के पीले फूल खिलखिलाकर हँस पड़े।

•

बम्बई से उनका पत्र आता रहता। मुझे हमेशा सावधानी में रहने को लिखते। उनका यही कहना था कि गाँव में अकेली, चाचा का बैर, ऐसी

हालत मे किसी तरह से झगड़े-झंझट में न फँसू।

उस उमर मे, जब पति-पत्नी जाने कैसे-कैसे प्रेम-पत्र लिखते हैं, कैसी-कैसी कल्पनाएँ किया करते है। हवाई घोडे पर सवार मन के मजे लेते हैं—हम बुजुर्गो जैसी बातें कर रहे थे। मेरे सामने एक बहुत बडा मसला था, प्रेम की बहकी-बहकी बातों से भी ज्यादा उन्मादी, ज्यादा नशीला। यह सम्भव है उन्होंने कभी इसलिए भी प्यार भरी बातें न लिखी हो कि मैं खुद पढ़ी तो थी नही, दूसरे से उस तरह का पत्र पढवाना भद्दी बात होती। उनके किसी पत्र मे सिरनामा 'प्राण प्रिये' 'हृदयेश्वरी' जैसा होता ही नही था। मेरे जवाबो मे भी यही बात होती। पति-पत्नी एक दूसरे को किस आत्मीय प्यार भरे शब्दो मे सम्बोधन कर पत्र लिखते हैं, यह हम दोनो ने अपनी जिन्दगी मे जाना ही नही।

अपने खेत मे अपना अनाज पैदा हुआ। अपनी इस सफलता का समाचार उन्हें देने के लिए मैं अकुला उठी। अपनी जिन्दगी की इतनी बडी साध पूरी होते देखकर मेरा मन फूला नही समा रहा था। कितनी जल्दी यह खबर उन्हे सुना दूँ, इसके लिए मैं छटपटा रही थी।

अपनी सभी चिट्ठियाँ मैं अपने रिश्ते की सास के पोते बिहारी से लिखवाया करती थी। बिहारी स्कूल मे पढने वाला लडका था। बडा सीधा और भोला। गाँव के अन्य बच्चो की तरह उद्दण्ड नही था और न ही माहिल का स्वभाव पाए था कि इधर की बात उधर लगाता फिरे। कैसी भी भेद की बात उसके सामने क्यो न कही जाय, पर मजाल क्या कि वह उसे कही कह दे।

चिट्ठी लिखने की मुझे जल्दी थी। मैं बिहारी के घर गई। अइया ओसारे मे ही बैठी थी। उनका शरीर बहुत बादी हो गया था। बुढापे मे वह जोर पकड गया। ज्यादा चल-फिर नही पाती थी। एक जगह बैठी रहती थी। सुरती सूँघने की उन्हे खूब आदत थी। जब देखो तब हथेली मे सुरती लिए नाक मे घुसेड़ती ही रहती। सुँघनी की झार से न उन्हें छीक आती और न ही कोई मिचमिचाहट। सुँघनी भी ऐसी वैसी नही कि केवल तम्बाकू रगड़ कर बना दिया। बाकायदा कपूर इलायची डाल-कर मसालेदार सुँघनी होती थी उनकी। न जाने कितने लोग तो उनकी

सुंघनी के लिए एक चक्कर उधर का जरूर लगा लेते । सुंघनी के इस प्रेम के कारण उनका नाम ही 'सुंघनी अइया' पड़ गया था ।

जब मैं पहुँची तो उस समय भी वे अपनी उसी मुद्रा में मग्न थी।

मैंने पूछा—"अइया ! बिहारी स्कूल से आ गया क्या ?"

चुटकी भर नसवार नाक में मग्न से खींचती हुई बोली—"अभी तो नहीं आया । आने का बखत हो रहा है । आता ही होगा । क्यों, क्या करना है ?"

"आए तो जरा भेज देना । कह देना तेरी चाची ने बुलाया है । कुछ जरूरी काम है ।"—कह कर मैं चलने को हुई ।

अइया का पोपला मुँह जब खुला तो एक अजीब ही बात सुनाई दी। सुनते ही मेरे पैर थम गए और मैं मुड़कर खड़ी हो गई । वह कह रही थी—"चिट्ठी लिखानी होगी ? साफ-साफ क्यों नहीं कहती ? बिहारी को तू कोई तनखाह देती है जो रोज-रोज तेरी चिट्ठी लिखने की नौकरी करता रहे । हम सबके भी मर्द-मानुस परदेस रहे, पर मजाल कभी चिट्ठी लिखी-लिखाई हो । लाज लगती थी, कैसे लिखाऊँ क्या लिखाऊँ ? तुझे जब देखो तब चिट्ठी । न जाने क्या ऊट-पटांग लिखवाती होगी ? मियाँ-बीवी की चिट्ठी—तेरी लिखे और उसकी आए तो पढ़े—सब परपंच जान जाय । अभी से सब सिच्छा मिल जाय उसे । बिहारी नहीं जायेगा तेरी चिट्ठी लिखने, बहू !"—अइया ने ये कटु बातें कुछ हँसते हुए कहीं । मतलब, मन की बात कहने के साथ-साथ मेरी हँसी भी उड़ाई ।

मैं सन्न रह गई । काटो तो खून नहीं । अइया के मुँह से यह अप्रत्याशित बात सुनकर कुछ देर तक तो मैं उनका मुँह ही देखती रह गई । सोचा, हमेशा मेरा सुख-दुख पूछने वाली अइया को आज क्या हो गया है । ऐसी कटु बातें आज वे क्यों कर रही हैं ? क्या इनको किसी ने कुछ कहकर बहका दिया है या बिहारी ने ही कुछ कहा है ? पर बिहारी क्या कहेगा ? जो शंका अइया के मन में है वैसी बात तो मैं कभी लिखाती ही नहीं । मेरा मन खिन्न होकर इन्हीं विचारों में डूब गया । मैं कुछ भी निश्चय न कर पायी कि अइया ने ऐसी बात क्यों कही । मैं जब बड़ी देर तक वैसी ही गुम-सुम खड़ी रही और कुछ न बोली तो अइया ने ही फिर कहा—

"ठगी सी क्यो खडी रह गई बहू ! बिहारी चिट्ठी लिखने नही जायेगा । मुझे यह नही अच्छा लगता ।"

मैं समझ गई । मेरे प्रति कोई दुर्भावना उनके मन मे न थी । पर अपनी ओर से बिहारी को यह सावधान रखना चाहती थी । मैने कहा—"अच्छी बात है अइया ! कोई जोर-जबरदस्ती थोडे ही है । मैं हूँ किस लायक जो बिहारी को तनखाह दूगी । तुम अपनी थी, बिहारी को अपना समझती थी—इसी बल पर मैं सुख मे दुख मे यहीं दौड़ी आती थी । तुम सबने ही मन की बात कहकर सहारा पाती थीं । आज से वह रास्ता भी तुमने बन्द कर दिया ।"—

मेरे मन को बडा दुख पहुँचा था । मलाल के मारे मेरी आँखों मे आँसू आ गए । मैं चुप-चाप घर चली आई । मन का दुख मैंने एकान्त मे आँसुओं के बीच हलका किया ।

जब मन कुछ शान्त हुआ तो मैंने निश्चय किया कि मैं पढूँगी । मन जब किसी चुनौती को स्वीकार कर लेता है तो उसके सामने की बाधाये स्वय हट जाती है । मुझे लगा कि यह अपढ जिन्दगी कुछ नही । बडी सहजता से पढने का मैंने निश्चय किया । उन दिनों औरतो का पढना-लिखना एक आश्चर्य की बात थी, विशेषकर गाँवो मे तो किसी विरले ही घर की लडकी पढी-लिखी होती थी । शिक्षित तो दूर रही, साक्षर भी नही होती थी । लोग अपनी लडकियो को भी नही पढाते थे, फिर मैं बहू होकर पढती इसमे एक कठिनाई थी, वह यह कि पढ़ूँ किससे ? कौन मुझे पढाये ? मेरे आत्म-विश्वास और लगन ने सदा मुझे राह दिखाई ।

गाँव से छोटे-छोटे बच्चे, जो उन दिनों स्कूल जाते थे, उन्हे मैंने अपने मे हिलाना-मिलाना शुरू किया, उनकी बडाई की, वे मुझसे खुलकर हिल गए । जब वे स्कूल मे लौटते तो कभी किसी को कभी किसी को मै अपने पास बैठा लेती । उन्ही की कलम-दवात, तख्ती-किताब लेकर उनसे ही, मै अक्षर-ज्ञान करने लगी । बच्चे अपने को मेरा मास्टर मान कर बहुत खुश होते । उनमे एक ऐसी भावना आती कि वे पढने मे बहुत तेज़ है तभी तो मुझे पढा रहे है । बच्चो की इस भावना और मेरी लगन ने मुझे अक्षर-ज्ञान करा दिया । जितना ज्ञान उनके पास था वह सब उन्होंने सहज दान

कर दिया।

मैं अपनी पढाई घर मे चुपके-चुपके करती थी, ताकि कोई देख न ले और मेरी यह वात तमाम गाँव मे फैल न जाय। देखा जाय तो पढ़कर मैं कोई वुरा काम नही कर रही थी, लेकिन लोगों की प्रवृत्ति ऐसी थी कि जब वे जान जाते कि मैं पढ रही हूँ तो वे मेरे इस प्रयास की हंसी ही उडाते। व्यर्थ सबके मजाक का शिकार बनकर मैं हतोत्साहित होती, इससे अच्छा यही जँचा कि किसी को पता ही न लगने दूँ।

कोई भी जब मेरे घर आता और मुझे सामने न देखता तो दरवाजे मे ही 'बहू-बहू' करके ठिठक जाता, पर बिहारी ऐसा था कि सीधे घर मे घुस आता।

एक दिन ऐसे ही वह आया। मैं दुनिया मे बेखबर हो लिखने का अभ्यास कर रही थी। स्कूल लौटने पर अपने नन्हे मास्टर को लिखा हुआ दिखाना होगा, पाठ पढ़ कर सुनाना होगा—उसी की तैयारी मे मैं लगी थी।

बिहारी आकर चुपचाप खडा हो गया। कुछ देर मे मुझे एक छाया का आभास हुआ तो मैने नजर उठाई। सामने बिहारी खडा था। मैंने चट से किताब बन्द कर दी। वह वडे जोर से हंसकर बोला—"पढो चाची पढो! शरमाती क्यो हो? पर तुमने यह पढना-लिखना कब मे शुरू किया? मुझे बताया नही और अब मैं देख रहा हूँ कि जो पाठ तुम याद कर रही हो इस हिसाब से तो काफी पढ लिया है। समझा, इसीलिए तो अब मुझे चिट्ठी लिखने को भी नही बुलाती।"

मैंने उसे बैठाते हुए कहा—"ऐसी बात नही बिहारी! तुमने ही तो शायद मना कर दिया था मेरी चिट्ठी लिखने को। जो तुम्हें अच्छा न लगे उसे मैं तुमसे जबरदस्ती कैसे करवाती?"

बिहारी को आश्चर्य हुआ, बोला—"चाची, मैंने कब मना किया था चिट्ठी लिखने को?"

"अइया ने ही मुझसे एक दिन कह दिया कि बिहारी तुम्हारी चिट्ठियाँ नहीं लिखेगा। तुमने ऐसी बात की होगी, तभी अइया ने कहा।"

उसके माथे पर वल गए। कुछ गुस्से के स्वर मे बोला—"ऐसी बात

कर दिया।

मैं अपनी पढाई घर मे चुपके-चुपके करती
और मेरी यह बात तमाम गांव मे फैल न जाय
कोई बुरा काम नही कर रही थी, लेकिन लो
जब वे जान जाते कि मैं पढ रही हूँ तो वे मे
उडाते। व्यर्थ सबके मजाक का शिकार बनकर
अच्छा यही जँचा कि किसी को पता ही न लगे

कोई भी जब मेरे घर आता और मुझे स
से ही 'बहू-बहू' करके ठिठक जाता, पर बिह
मे घुस आता।

एक दिन ऐसे ही वह आया। मैं दुनिय
अभ्यास कर रही थी। स्कूल लौटने पर अप
हुआ दिखाना होगा, पाठ पढ कर सुनाना होगा
लगी थी।

बिहारी आकर चुपचाप खडा हो गया। बु
का आभास हुआ तो मैंने नजर उठाई। सामने
चट से किताब बन्द कर दी। वह बडे जोर से
चाची पढो! शरमाती क्यों हो? पर तुमने यह प
किया? मुझे बताया नही और अब मैं देख रहा हूँ
कर रही हो इस हिसाब से तो काफी पढ लिया है
अब मुझे चिट्ठी लिखने को भी नही बुलाती।"

मैंने उसे बैठाते हुए कहा—"ऐसी बात नहीं
शायद मना कर दिया था मेरी चिट्ठी लिखने को।
उसे मैं तुमसे जबरदस्ती कैसे करवाती?"

बिहारी को आश्चर्य हुआ, बोला—"चाची, मै
चिट्ठी लिखने को?"

"अइया ने ही मुझसे एक दिन कह दिया कि बिह
नहीं लिखेगा। तुमने ऐसी बात की होगी, तभी अइ

उसके माथे पर बल गए। कुछ गुस्से के स्वर मे

आंखों के सामने एक चमत्कार के रूप में दिखाई दे रहा है। यह सब चमत्कार तुम्हारे आने से ही तो संभव हुआ। इसलिए मैं तुम्हे अन्नपूर्णा कहता हूं तो क्या बुरा है ? और हां, एक बात और याद आई। तुम्हे पुकारने में मुझे बडी अडचन होती है। तुम्हारे मायके का नाम लेकर पुकारा नहीं जा सकता। हमारे इस गांव में औरतों का नया नाम रखने का कोई रिवाज नही। तुम अभी मां भी नहीं बनी कि मैं वही 'फलाने की मां' कह कर ही पुकारूँ। अभी-अभी मैने तुम्हे अन्नपूर्णा कहा है न ! बस, इसी को छोटा करके मैं तुम्हे 'अन्नदा' कहा करूँगा। चलो, यह एक समस्या इसी बहाने खूब हल हुई।"

मैं ठगी-ठगी-सी सब सुनती रही। कुछ बोल ही न सकी। उन्होने अपनी भावुकता मे उन्होंने मुझे कितना ऊँचा उठा दिया, उसी को लेकर मैं आत्म-विभोर हो गई। वे खाना खाकर चले गए। मैं जब खाने बैठी तो उनकी सारी बातें मेरे मन में फिर से उभरने लगी।

मन को प्रिय लगने वाली बातो को आदमी बार-बार सोचता है। उस बार-बार के सोचने मे उसे हर बार नए प्रकार का ही आनन्द आता है, तभी तो वह उनसे ऊबता नहीं। उन्ही को सोचने मे मग्न रहता है।

मेरे मन में भी वही बातें उठतीं, यह स्वाभाविक था। मैं अपनी उसी खुशी में बह चली। जिन्दगी बिल्कुल सीधी और सपाट चली जाय तो फिर दुख ही काहे का। जब जिन्दगी का एक ही ढर्रा हो, एक ही गति हो, उसमें कोई चढाव-उतार न हो, उसमे कोई रुकावट न हो, कुछ अजीबपन न हो, तो आदमी की जिन्दगी पशु-पक्षियो की तरह साधारण रहकर समाप्त हो जाये। लेकिन ऐसी बात नही। जिन्दगी मे आने वाली भिन्नता तथा चढाव-उतार ही उसके सुख-दुख का कारण होते है ?

मेरी जिन्दगी के इस चढाव मे एक बहुत बडा उतार था। वह उतार मैं कभी-कभी मन ही मन महसूस भी करती थी, पर उस दिन वही मेरी जिन्दगी मे एक खास समस्या बन गई। उनकी बातों को सोचने के आनन्द मे मैं बही जा रही थी। उन्ही बातो के प्रसंग ने मुझे झटका-सा दिया। बरसात की वेगवान धारा जैसे किसी चट्टान से टकरा कर सिर पीट ले, बस वैसी ही मेरी गति हो गई। आनन्द के वे सारे विचार

हो क्या ?" मुँह का कौर निगलते हुए, उन्होंने आँखें ऊपर उठाई। मुझे लगा वे कुछ गम्भीर हो गए थे। मैंने चेहरे पर नजर गडा कर बोले—"क्या कहती हो, पगला गया हूँ ? असल मे मुझे खुद को ही नही मालूम कि क्या हो गया हूँ। पर जब तुम कहती हो तो जरूर पगला गया होऊँगा; लेकिन तुम्हारी बातो पर भी पूरा विश्वास कैसे करूँ? तुम्हारे भी लक्षण कुछ अच्छे नही दीखते। दुबारा खाना परोसने के लिए पूछती ही नही। कहने पर जब उठी भी तो भरा कटोरा ही गिरा दिया और अब गुम-सुम खडी हो जैसे बहुत बडा कसूर हो गया हो। मैं कहता हूँ कि बैठो—" *यह कहकर उन्होंने जूठे हाथो से ही मेरी धोती खींचकर मुझे बैठा दिया।* पर बोलना बन्द नही किया।

—"असल मे अगर पूछा जाये तो मुझे कुछ नही हुआ है। तुम मेरे मन की बातो को जरा बारीकी से सोचो समझो तो तुम्हे भी यही लगेगा कि कुछ नही हुआ है। आज की इस मेरी खुशी मे बहुत सारी बातें आकर इकट्ठी हो गई है। मेरी *अन्नपूर्णा ! तुम साक्षात अन्नपूर्णा हो।*"

मैंने दाँतो तले जीभ दबाई और बोली—"शी ! शी ! ! माता जग-दम्बा को इस तरह छोटा करके मत देखो।"

वे बोलते ही जा रहे थे। मेरी बात ने उनके विचारो को और बढावा दिया। उनका स्वर कुछ और गम्भीर हो गया—"छोटा करके कहाँ देख रहा हूँ अन्नपूर्णा ! तुम जैसी ही किसी नारी ने पूर्वकाल मे हमारे पूर्वजो से यह उपाधि पाई होगी। फर्क इतना ही है कि तुम्हारा क्षेत्र इस घर तक सीमित है, उसका क्षेत्र बडा विशाल रहा होगा। अपने सुकार्यो से आज वह हम सब की निगाहो मे मनुष्य से ऊपर उठ कर देवी-देवताओ की श्रेणी मे दिखाई देती है। हमारी श्रद्धा और भक्ति उनके प्रति बनी रही, हम अपने जीवन मे उससे प्रेरणा लेते रहे, अत हम उसे देवी के रूप मे मानने लगे। मेरी अन्नपूर्णा तो तुम्ही हो। यह घर फिर बसेगा, इसमे फिर चिराग जलेगा, इसका चूल्हा फिर गरम होगा, इस रसोई मे, इस चौके पर मैं खाना खाने बैठूगा, कोई बैठकर मुझे खिलायेगी, मेरी जिन्दगी की सभी कामनाएँ इसी घर मे फिर से फलीभूत होगी, इसकी कहाँ कल्पना थी, कब सम्भावना थी ? पर आज वह सभी कुछ मेरी

आँखों के सामने एक चमत्कार के रूप में दिखाई दे रहा है। यह सब चमत्कार तुम्हारे आने से ही तो संभव हुआ। इसलिए मैं तुम्हे अन्नपूर्णा कहता हूं तो क्या बुरा है ? और हाँ, एक बात और याद आई। तुम्हे पुकारने में मुझे बडी अड़चन होती है। तुम्हारे मायके का नाम लेकर पुकारा नही जा सकता। हमारे इस गाँव मे औरतों का नया नाम रखने का कोई रिवाज नही। तुम अभी माँ भी नही बनी कि मैं वही 'फलाने की माँ' कह कर ही पुकारूँ। अभी-अभी मैने तुम्हें अन्नपूर्णा कहा है न ! बस, इसी को छोटा करके मैं तुम्हे 'अन्नदा' कहा करूँगा। चलो, यह एक समस्या इसी बहाने खूब हल हुई।"

मैं ठगी-ठगी-सी सब सुनती रही। कुछ बोल ही न सकी। उन्होने अपनी भावुकता मे उन्होंने मुझे कितना ऊँचा उठा दिया, उसी को लेकर मैं आत्म-विभोर हो गई। वे खाना खाकर चले गए। मैं जब खाने बैठी तो उनकी सारी बातें मेरे मन मे फिर से उभरने लगी।

मन को प्रिय लगने वाली बातो को आदमी बार-बार सोचता है। उस बार-बार के सोचने मे उसे हर बार नए प्रकार का ही आनन्द आता है, तभी तो वह उनसे ऊबता नही। उन्ही को सोचने मे मग्न रहता है।

मेरे मन मे भी वही बातें उठती, यह स्वाभाविक था। मैं अपनी उसी खुशी में बह चली। जिन्दगी बिल्कुल सीधी और सपाट चली जाय तो फिर दुख ही काहे का। जब जिन्दगी का एक ही ढर्रा हो, एक ही गति हो, उसमें कोई चढाव-उतार न हो, उसमे कोई रुकावट न हो, कुछ अजीबपन न हो, तो आदमी की जिन्दगी पशु-पक्षियो की तरह साधारण रहकर समाप्त हो जाये। लेकिन ऐसी बात नही। जिन्दगी मे आने वाली भिन्नता तथा चढाव-उतार ही उसके सुख-दुख का कारण होते हैं ?

मेरी जिन्दगी के इस चढ़ाव मे एक बहुत बड़ा उतार था। वह उतार मैं कभी-कभी मन ही मन महसूस भी करती थी, पर उस दिन वही मेरी जिन्दगी में एक खास समस्या बन गई। उनकी बातो को सोचने के आनन्द मे मैं वही जा रही थी। उन्हीं बातो के प्रसग ने मुझे झटका-सा दिया। बरसात की वेगवान धारा जैसे किसी चट्टान से टकरा कर सिर पीट ले, बस वैसी ही मेरी गति हो गई। आनन्द के वे सारे विचार

पल भर में एक गहरे विषाद में डूब गए। नाम रखने के बहाने ही सही, पर उन्होंने कह तो दिया 'अभी तुम माँ भी तो नहीं बनी कि मैं तुम्हें ललाने की माँ कह कर पुकारूँ।'—इससे यह साफ हो गया कि उनके मन में भी यह काँटा है कि, मैं माँ नहीं बनी। मन की यह हल्की-सी चटक कल भयानक रूप धारण कर सकती है। हमने एक दीप सँजोया, स्नेह भरा, बाती सजाई, पर दीप अभी तक नहीं जला। अँधेरे की एक अस्पष्ट धुंधली सी छाया उतरी है। धीरे-धीरे यह और गहरी हो जायेगी और फिर घुप्प अँधेरा…।

मन का रुख जब इस तरफ हुआ तो वह और जोर-जोर से दौड़ने लगा। न जाने कितनी अमंगल बातें मन में उतरती गईं। इन सब को भूल जाने के लिए मैंने अपने सिर को एक हल्का-सा झटका दिया, विचारों को मोड़ना चाहा, पर पापी मन जा-जाकर वहीं अटकता था। मन के इस आवेग को रोकने के लिए मैं थोड़ा-बहुत खाकर बाहर चली आई। सचमुच उस क्षण से ही मुझे न जाने क्या हो गया कि सारा घर सूना-सूना लगने लगा। जिस घर को लेकर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था, जिसे मैं हरा-भरा समझती थी, उसमें सूनेपन की एक अजीब-सी उदासी भर गई। अपनी गृहस्थी को लेकर मेरे मन में खुशियों की जो झांझर बज रही थी, लगा वह एक झटके से सन्नाटे में बदल गई।

वे ओसारे में आकर आराम के लिए लेट गए होंगे, हो सकता है गहरी नींद में सो गए हों। मैं आकर बाहर की चौखट पर बैठ गई, बिल्कुल गुमसुम। किससे बोलूँ? घर में कुल दो प्राणी, एक बेखबर सो रहा है, दूसरा सोच में छटपटा रहा है। बाहर आई थी कुछ मन को हल्का करने, पर वह सन्नाटा मुझे और खला। मैं बेचैन हो उठी। मन को हल्का करने के लिए कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? क्या इन्हें ही जगा कर कुछ बातें करूँ? यही सब सोच रही थी कि मन को अपने आप समाधान मिला।

मेरी लिखी चिट्ठी पाकर जब उन्हें यह पता लगा कि मैं पढ़-लिख गई हूँ तो उन्होंने तुलसीकृत रामायण की एक प्रति यहाँ से भेज दी थी और साथ ही लिखा था कि इसे पढ़ना। इससे बढ़कर और कोई पुस्तक नहीं। सुख में, दुख में, हर वक्त इससे आदमी को समाधान मिलता है। मैं बट-

मे उठी और वह रामायण लेकर अपने कमरे मे चली गई।

कही से भी पढने का विचार करके मैंने रामायण खोल कर जो पढना शुरू किया तो पहले दोहे के साथ यह चौपाई उठी—

"एक बार भूपति मन माँही, भइ गलानि मोरे सुत नाही।"

मेरे मन को धक्का लगा। यह तो मैंने सुना था कि राजा दशरथ के चार पुत्र थे, पर उन पुत्रों के होने से पहले उनके मन मे भी पुत्र न होने की ग्लानि उठी थी, इसका पता न था। मुझ जैसा दुःख दशरथ को भी था, यह जानकर मन को सान्त्वना मिली। अपना जैसा दुखी इस दुनिया में और कई है, यह जान लेने पर अपना दुख कितना हल्का हो जाता है, यह तो दुखिया ही बता सकते है। दशरथ की तरह मुझे भी ग्लानि थी इसलिए उस प्रसग को पढने की जितनी उत्सुकता मुझे हुई, उतना ही मेरा मन हल्का हो गया। मेरा दुख दशरथ के दुख में समा गया।

उस प्रसग को पढ़ते-पढते मैं वही जमीन पर ही लेट गई और थोड़ी देर में मुझे नीद भी आ गई।

जब जागी तो देखा सामने वे खडे है। मैं खुद तो क्या जागी, बल्कि उन्होंने ही जगाया होगा, ऐसा मुझे लगा। आँगन की धूप खपरैल पर चढ गई थी। दिन जाने कितना ढल गया और मैं सोती ही रही, यह सोच कर मुझे अपने पर लज्जा आई। मैं उठने को ही थी कि उन्होंने मेरे हाथ से रामायण ले ली। मैं खुले पन्नों के बीच मे अँगुली लगाकर सो गई थी। उन्होंने चट-से वही सफा पकड लिया। बोले—"रामायण पढी जा रही है? ठीक है, इसे पढ़ो। इसमें बहुत अच्छी बातें लिखी है।"—कह कर वे स्वय भी उसे देखने लगे।

मैं डरी, कही वे कुछ और भी न सोचने लगें। मैं मन ही मन 'राम राम' कर रही थी और चाहती थी रामायण छीन कर भाग जाऊँ, पर वैसा करने की हिम्मत नही हुई। इस उधेडबुन में पडी ही थी कि कुछ पढते-पढते वे हँसे और हँसी के बीच उन्होंने मृदु स्वर से कहा—"अच्छा जी! तो यह पढा जा रहा है—

'भये प्रगट कृपाला दीनदयाला, कौशल्या हितकारी।'

"कुछ लक्षण हैं क्या?"—कह कर उन्होंने स्वयं रामायण एक ओर

रख दी और मेरे निकट आ गए।

मेरा चोर उन्होंने पकड़ लिया, यह सोचकर मैं और चकित हो गई। सयोग भी कैसा ? मैं दशरथ की ग्लानि पढकर अपना दु.ख भूली थी और वे कौशल्या का सुख पढ़ कर विहँसे थे।

आदमी को दु ख की याद हमेशा ही एक जैसी रहे तो वह अकुला कर मर जाय। भूलते जाना भी ईश्वर का ऐसा वरदान आदमी को मिला है, जो उसे किसी भी गम मे मर जाने से बचाए रखता है। दिन बीतने के साथ-साथ दु ख की पीडा भी हल्की होती जाती है। माँ न हो पाने का जो दुःख मुझे पहले दिन हुआ था और उससे जो बेचैनी मुझे हुई थी, वह एक सीमा पर आकर रुक गई। उसके बाद ज्यों-ज्यो दिन बीतते गए मेरी व्यथा भी हल्की होती गई। पर वह मन से पूरी तरह निकल जाय, ऐसा तो सभव नहीं था।

ब्याह हुए लगभग पाँच साल बीत चुके थे, इसी से मेरा मन कुछ अधिक खिन्न रहने लगा। मेरी यह चिन्ता मेरे ही तक सीमित न रहकर पड़ोसियों तथा सहेलियों तक की सीमा मे पहुँच गई। मेरी चिन्ता का भार उन्हे भी ढोना पड रहा था, अतः उनकी निगाहो मे मेरे प्रति कुछ अजीब-सा दुराव आ गया। किसी भी सामाजिक मगल-कार्य मे मेरे सामने पडने से कतराया जा रहा है, ऐसा मैं स्पष्ट अनुभव करने लगी। यहाँ तक कि कुछ औरतें अपनी गोद का बच्चा खेलाने के लिए मेरी गोद मे देने मे हिचकने लगी। अपनी दशा पर मुझे रोना आया और साथ तरस भी। पर करती क्या, अपने वश की बात तो थी नहीं। मेरी वजह से किसी के कार्य मे बाधा न हो, किसी का अमगल न हो···यह सोचकर मैंने कहीं भी आना-जाना बन्द कर दिया। मैं स्वय किसी के मिलने पर कतराने लगी। मेरी कोशिश यही रहती कि जहाँ तक हो सके किसी से किसी प्रकार का ऐसा सम्बन्ध न रखूँ जिससे उसके मन मे खटका हो।

^ : अन्नदा

' औरत का अपना मूल्य ही क्या है ' अगर वह अपने मे से इस ससार को कुछ नही दे पाती तो ? बंजर भूमि···इस जीवन-दायिनी धरती की छाती पर कलंक ही तो है। निपूती होने पर वैसी ही हेय और व्यर्थ यह औरत की जात है। अपना देकर यह जो सम्पूर्णता प्राप्त करती है, वही तो इसका वास्तविक पावना है।

अपने मन का यह दुःख मैं धैर्य से सह तो रही थी, क्या मेरा सम्पूर्ण जीवन ऐसा ही अन्धकारमय रहेगा ? मेरी सारी जिन्दगी बजर भूमि-सी व्यर्थ जायेगी ? इस अँधेरे घर को मैं रोशनी न दे पाऊँगी ? अपनी ही हीनता मे मुझे अपादेय और तिरस्कृत होकर जीना पडेगा···? इसकी कल्पना मे मेरी आँखो के आगे अँधेरा छा जाता था। मन के इस अँधेरे में भी मेरे हृदय मे बैठे जीवन्त ईश्वर का आलोक कभी-कभी झिलमिला उठता था। लगता था, इस निराश अँधेरे मे भी प्रकाश की एक पतली सी लौ निरन्तर मेरे अन्तर्मन को आशा की झिमझिलाहट दे रही थी तथा मेरे हृदय का ईश्वर मुस्करा कर आश्वासन दे रहा था—पगली! निराश क्यों होती है ? थक कर बैठ जाने से, मन के हार जाने से तेरा प्राप्य तुझे कैसे मिलेगा ? आ, मेरे साथ आ। तेरा पावना तुझे जरूर मिलेगा।

जीवन के अँधेरे रास्ते पर मन की आशा की इसी ज्योति के सहारे मैं चली जा रही थी।

इसी प्रकार दिन बीत रहे थे।

एक दिन वे शाम को कही बाहर से आए और ओसारे मे पडी खाट पर बैठते हुए मुझे आवाज दी। मैं बाहर आई और उनकी खाट के पास खडी होकर बोली—"कहो, क्या बात है ?"

बैठे-बैठे ही उन्होने अपनी नजर मुझ पर टिका दी। बोले कुछ नही। मैंने चकित होकर कहा—"क्या देख रहे हो ? कुछ कहना भी है या यों ही बुला लिया ?"

वे केवल 'ऊँ ऊँ' करके रह गए। बोले कुछ नही। उनका यह व्यवहार मैं समझ ही न पाती थी।

मुझे कुछ खीझ हुई। मैने कहा—"यह 'ऊँ ऊँ' क्या लगा रखी है ? कुछ बात हो तो कहो, नही तो मै चली।"

वे मुझे खोजते देख कर कुछ धीमे स्वर मे बोले—"आज तुम बहुत अच्छी लग रही हो, अन्नदा !"

मुझे गुस्सा आ गया। उसी स्वर मे बोली—"छिः, छि. !! यही कहने को बुलाया था ? चूल्हे के सामने से चली आ रही हूँ और तुम्हे अच्छी लग रही हूँ। यह तो बताओ कि मैं कब तुम्हे अच्छी नही लगती? सो कर उठूँ तो अच्छी लगूं, बर्तन माँजू तो अच्छी लगूँ, चूल्हा फूकूँ तो अच्छी लगूँ। और अब यहाँ बैठ कर सुन्दरता निहार रहे हो। भाँग तो नहीं पी है ? कुछ मौका भी तो देखा करो। जब मुझे अकेली देखा तब यही बात। मेरी सुन्दरता गई भाड मे। बोलो, कुछ पानी-वानी पीना हो तो ले आऊँ, नही तो चलूं रसोई मे।"

गुस्से मे मैं कुछ ज्यादा बोल गई थी, यह मुझे बाद में महसूस हुआ; पर उन पर कुछ असर न हुआ, ऐसी उनकी मुद्रा मे साफ दीख रहा था। जब वह बोले तो और भी स्पष्ट हो गया। कहने लगे—"तुम तो कह ही रही हो कि भाँग पीकर आया हूँ फिर और कुछ कैसे पीयूँगा।"

उनका यह ठडा जवाब सुनकर मुझे हँसी आए बिना न रही। अपनी हँसी के खीन मे बोली—"जब ऐसी बेमौके की बहकी-बहकी बातें किया करते हो तो और क्या कहूँ ?"

वे बात मे बात निकाल रहे थे, बोले—"जो अच्छा लगे उसे अच्छा कहने मे क्या बुराई है ? भाँग का नशा है, अगर यही बात है तो जो मैं रोज तुम्हारे बनाए खाने की तारीफ किया करता हूँ कि यह बहुत अच्छा बना है, तो उस वक्त तुम नही कहती कि भाँग पीकर आए हो। मैं भी ताडता रहता हूँ। मेरी बात सुनकर तुम मन-ही-मन गुलगुल होती रहती हो।"

"अब समझी, मुझे खुश करने के लिए ही मेरी और मेरे बनाए खाने की तारीफ करते रहते हो। अरे बाबा, मैं तो वैसे भी खुश हूँ। इन झूठी बडाइयों से क्यों छलते हो ?"—मेरे स्वर मे कुछ व्यथा थी।

वे बोले—"लो, तुमने उल्टा ही मतलब लगा लिया। मैं झूठ नही बोलता अन्नदा ! सचमुच ही तुम मुझे अपने हर काम मे अच्छी लगती हो, अपने हर रूप मे अच्छी लगती हो। बर्तन माँजते समय जब तुम्हारे

मय हो गई। इस घर मे श्मशान का सूनापन जीवन के उल्लास से भर गया। मुरझाती हुई लता को अमृत मिला।

मेरी पहली औलाद—मेरा जीवन सुफल करने वाला यह गोपाल जब धरती पर आया तो न जाने कितने उल्लसित कठों से फूटा—

'होत भोर पह फाटत होरिला जनम भए
बाजन लागी अँगन बधइया उठन लागे सोहर।'

खूब सोहर उठा। सारा घर भर गया।

उनकी खुशी का तो जैसे कोई ठिकाना ही नही था। उनका वश चलता तो वे उसी हालत मे उन सब औरतो के बीच मे आकर मुझे अँकवार में भर लेते।

राजा दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे। वे सोने के खडाऊँ पर चल सकते थे। राम का जन्म सुनकर वे सोने के खडाऊँ पर खुटुर-खुटुर चले भी रहे होंगे, पर मेरे दशरथ जब गोपाल के जन्म पर गाए गए कि—

'सोने के खडउआँ राजा दशरथ खुटुर-खुटुर चलें'

तो सचमुच उन्होंने अपने को अयोध्या का राजा दशरथ ही समझा, ऐसा उस समय उनकी चाल से लग रहा था।

गोपाल की याद आते ही आज तीसरे पहर का उसका व्यवहार अन्नदा की आँखों के आगे उतर आया। गोपाल ने आज उसे 'राँड' कह दिया था। वह शब्द फिर अपने पूरे वेग से उसकी छाती में चुभ गया। अपने ही पेट का फल कलेजे मे काँटा चुभो गया था। अँधेरे अतीत मे डूबी अन्नदा ने मन को हल्का करने के लिए जब करवट बदली तो रात का ध्यान आया। कितनी रात बीत गई और वह अभी तक जाग ही रही है। जीवन के किस चक्रव्यूह में फँस गई थी, इसका ज्ञान उसे जैसे अब हुआ।

रात का सन्नाटा अपने पूरे नशे में था। निकट ही लेटी हुई मंदा की धीमी-धीमी साँस चलने के स्वर के अतिरिक्त कही कुछ सुनाई न पडता था। गीदड़ों के रोने और कुत्तों के भोंकने की भी आवाज न थी।

रात कितनी बाकी है, यह देखने के लिए वह उठ कर आँगन में आई। समय का घडी से अधिक सही ज्ञान देने वाले तारों की गति का उसे पता था। आँगन मे खड़ी होकर उसने तारो-भरे निर्मल आकाश पर दृष्टि डाली

तो है। बाग तैयार हो गया तो बहुत अच्छा रहेगा। सबसे बड़ा फायदा तो यह कि अपने घर के पास ही बाग हो जायेगा।" यह कह कर मैं वहाँ से टल गई। असल में मेरा मन इतना अस्वस्थ हो गया था कि मैं कुछ भी बात नहीं करना चाहती थी।

आदमी जब किसी काम का संकल्प कर देता है तो फिर उसे पूरा करते देर नहीं लगती। क्योंकि किसी काम की सिद्धि के लिए शरीर-बल की नहीं, बल्कि मनोबल की आवश्यकता होती है। दुनिया के बड़े-बड़े कामों को जिन लोगों ने पूरा किया है, वे सब दृढ़-निश्चयी तथा आत्मबली थे। हम भी अपनी गृहस्थी की जरूरतें अपने दृढ़ निश्चयों से पूरा करने में जुटे थे।

एक दिन वे घिसियावन को लेकर उस ऊसर में डट गए। पहले उसको साफ कराया और फिर तीन-चार दिनों में चारों ओर हद बांध दी। सीधी कतार में उन्होंने बहुत गहरे-गहरे थाले बनवाए और अनेकों तरह की खाद से उन्हें भर दिया। जब वे उसमें जुटे तो जी-जान से जुट गए। एक दिन वह ऊसर सैंकड़ों पेड़ों की पाँत से भर गया।

वह बंजर और वीरान ऊसर—उपेक्षित और बेकार धरती—एक कोढ़, एक कलंक—अब हरा-भरा बाग हो गया। दूसरी जगह से लाकर लगाए गए पौधे एक बार मुरझाए। पर, दस दिनों में ही उन्होंने कोपलें फोड़ीं, उनमें नई कलियाँ लगीं।

दैव का कैसा योग कि इधर भी उसने एक चमत्कार किया। मेरा मुरझाया मन हरा होने लगा। आशा की एक क्षीण लौ लहकी और मेरे मन का ऊसर लहलहा उठा। उस बाग में पेड़ हरे हुए और इधर मेरी गोद हरी हुई।

मेरी जिन्दगी सुफल हो गई। मेरा जीवन जो अकारथ हो रहा था इस गोपाल के पैदा हो जाने से धन्य हो गया। मेरी अमंगल काया मंगल-

मय हो गई। इस घर में श्मशान का सूनापन जीवन के उल्लास से भर गया। मुरझाती हुई लता को अमृत मिला।

मेरी पहली औलाद—मेरा जीवन सुफल करने वाला यह गोपाल जब धरती पर आया तो न जाने कितने उल्लसित कंठों से फूटा—

'होत भोर पह फाटत होरिला जनम भए
बाजन लागी अँगन बधइया उठन लागे सोहर।'

खूब सोहर उठा। सारा घर भर गया।

उनकी खुशी का तो जैसे कोई ठिकाना ही नही था। उनका वश चलता तो वे उसी हालत मे उन सब औरतो के बीच में आकर मुझे अँकवार मे भर लेते।

राजा दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे। वे सोने के खड़ाऊँ पर चल सकते थे। राम का जन्म सुनकर वे सोने के खडाऊँ पर खुटुर-खुटुर चले भी रहे होंगे, पर मेरे दशरथ जब गोपाल के जन्म पर गाए गए कि—

'सोने के खडउआँ राजा दशरथ खुटुर-खुटुर चलें'

तो सचमुच उन्होंने अपने को अयोध्या का राजा दशरथ ही समझा, ऐसा उस समय उनकी चाल से लग रहा था।

गोपाल की याद आते ही आज तीसरे पहर का उसका व्यवहार अन्नदा की आँखो के आगे उतर आया। गोपाल ने आज उसे 'रांड' कह दिया था। वह शब्द फिर अपने पूरे वेग से उसकी छाती मे चुभ गया। अपने ही पेट का फल कलेजे मे कांटा चुभो गया था। अँधेरे अतीत मे डूबी अन्नदा ने मन को हल्का करने के लिए जब करवट बदली तो रात का ध्यान आया। कितनी रात बीत गई और वह अभी तक जाग ही रही है। जीवन के किस चक्रव्यूह में फँस गई थी, इसका ज्ञान उसे जैसे अब हुआ।

रात का सन्नाटा अपने पूरे नशे में था। निकट ही लेटी हुई मदा की धीमी-धीमी साँस चलने के स्वर के अतिरिक्त कही कुछ सुनाई न पडता था। गीदड़ो के रोने और कुत्तो के भोंकने की भी आवाज न थी।

रात कितनी बाकी है, यह देखने के लिए वह उठ कर आँगन में आई। समय का घडी से अधिक सही ज्ञान देने वाले तारों की गति का उसे पता था। आँगन में खड़ी होकर उसने तारो-भरे निर्मल आकाश पर दृष्टि डाली

तो है। बाग तैयार हो गया तो बहुत अच्छा रहेगा। सबसे बड़ा फायदा तो यह कि अपने घर के पास ही बाग हो जायेगा।" यह कह कर मैं वहाँ से टल गई। असल मे मेरा मन इतना अस्वस्थ हो गया था कि मैं कुछ भी बात नही करना चाहती थी।

आदमी जब किसी काम का सकल्प कर देता है तो फिर उसे पूरा करते देर नही लगती। क्योंकि किसी काम की सिद्धि के लिए शरीर-बल की नही, बल्कि मनोबल की आवश्यकता होती है। दुनिया के बड़े-बड़े कामों को जिन लोगों ने पूरा किया है, वे सब दृढ-निश्चयी तथा आत्मबली थे। हम भी अपनी गृहस्थी की जरूरतें अपने दृढ निश्चयो से पूरा करने में जुटे थे।

एक दिन वे घिसियावन को लकर उस ऊसर मे डट गए। पहले उसको साफ कराया और फिर तीन-चार दिनों में चारों ओर हद बाध दी। सीधी कतार मे उन्होंने बहुत गहरे-गहरे थाले बनवाए और अनेकों तरह की खाद से उन्हे भर दिया। जब वे उसमें जुटे तो जी-जान से जुट गए। एक दिन वह ऊसर सैकडों पेडो की पाँत से भर गया।

वह बंजर और वीरान ऊसर—उपेक्षित और बेकार धरती—एक कोढ, एक कलक—अब हरा-भरा बाग हो गया। दूसरी जगह से लाकर लगाए गए पौधे एक बार मुरझाए। पर, दस दिनों मे ही उन्होंने कोपलें फोड़ी, उनमे नई कलियाँ लगी।

दैव का कैसा योग कि इधर भी उसने एक चमत्कार किया। मेरा मुरझाया मन हरा होने लगा। आशा की एक क्षीण लौ लहकी और मेरे मन का ऊसर लहलहा उठा। उस बाग मे पेड हरे हुए और इधर मेरी गोद हरी हुई।

मेरी जिन्दगी सुफल हो गई। मेरा जीवन जो अकारथ हो रहा था इस गोपाल के पैदा हो जाने से धन्य हो गया। मेरी असंगल काया मगल-

मय हो गई। इस घर में श्मशान का सूनापन जीवन के उल्लास से भर गया। मुरझाती हुई लता को अमृत मिला।

मेरी पहली औलाद—मेरा जीवन सुफल करने वाला यह गोपाल जब धरती पर आया तो न जाने कितने उल्लसित कंठों से फूटा—

'होत भोर पह फाटत होरिला जनम भए
बाजन लागी अँगन बधइया उठन लागे सोहर।'

खूब सोहर उठा। सारा घर भर गया।

उनकी खुशी का तो जैसे कोई ठिकाना ही नही था। उनका वश चलता तो वे उसी हालत मे उन सब औरतो के बीच में आकर मुझे अँकवार मे भर लेते।

राजा दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे। वे सोने के खड़ाऊँ पर चल सकते थे। राम का जन्म सुनकर वे सोने के खडाऊँ पर खुटुर-खुटुर चले भी रहे होंगे, पर मेरे दशरथ जब गोपाल के जन्म पर गाए गए कि—

'सोने के खडउआँ राजा दशरथ खुटुर-खुटुर चलें'

तो सचमुच उन्होंने अपने को अयोध्या का राजा दशरथ ही समझा. ऐसा उस समय उनकी चाल से लग रहा था।

गोपाल की याद आते ही आज तीसरे पहर का उसका व्यवहार अन्नदा की आँखो के आगे उतर आया। गोपाल ने आज उसे 'राँड' कह दिया था। वह शब्द फिर अपने पूरे वेग से उसकी छाती में चुभ गया। अपने ही पेट का फल कलेजे मे काँटा चुभो गया था। अँधेरे अतीत मे डूबी अन्नदा ने मन को हल्का करने के लिए जब करवट बदली तो रात का ध्यान आया। कितनी रात बीत गई और वह अभी तक जाग ही रही है। जीवन के किस चक्रव्यूह मे फँस गई थी, इसका ज्ञान उसे जैसे अब हुआ।

रात का सन्नाटा अपने पूरे नशे मे था। निकट ही लेटी हुई मदा की धीमी-धीमी साँस चलने के स्वर के अतिरिक्त कही कुछ सुनाई न पडता था। गीदडों के रोने और कुत्तों के भोंकने की भी आवाज न थी।

रात कितनी बाकी है, यह देखने के लिए वह उठ कर आँगन में आई। समय का घड़ी से अधिक सही ज्ञान देने वाले तारों की गति का उसे पता था। आँगन में खड़ी होकर उसने तारो-भरे निर्मल आकाश पर दृष्टि डाली

और फिर स्वत ही बुदबुदाई—'निगोडी जाडे की रात—बीतने को ही नहीं आती।'

अभी कम से कम तीन घन्टा रात बाकी है, यह सोच कर वह फिर थकी-थकी सी आकर बिस्तर पर लेट गई। अभी सीधी तरह पैर भी न फैला सकी थी कि मुन्ना जोर से रोया। उसके रोने के साथ ही साथ बहू के बडबड़ाने का भी स्वर आ रहा था।

अन्नदा का मन हुआ कि वह न उठे। इसी तरह चुपचाप पडी रहे। मुन्ना रोता है तो रोने दे। बहू खीझती है तो खीझने दे, सब मेरी बला से। मेरे सुख-दुख का कौन हो रहा है ? मैं ही क्यो छाती पीट कर मरूँ?—यह सोचकर उसने करवट बदल ली, जैसे वह कुछ सुन की नहीं रही है। इस रोने मे, इस खीझ से उसका कुछ मतलब ही नहीं।

मन की कटुता से ऐसा वह सोच तो गई और उसने करवट भी बदल लिया, पर उसका जो असली स्वभाव था, ममता की जो गहरी पीडा थी, उसने झकझोर दिया। उधर बहू की चिनचिनाहट और मुन्ने का रोना बढता ही जा रहा था। मन के सारे विपरीत विचारो को वह सहज ही भूल कर उठी और यह कहते हुए बहू के पास चली—"अरी बहू ! क्या हो गया, मुन्ना क्यों रो रहा है ?"

बहू चिनचिना तो रही थी। सास के इस सवाल से अपने को हल्का समझने के बजाय अधिक झल्लाई। कुछ जवाब नही दिया। अपनी धुन में बही जा रही थी—"पेशाब का घडा बाँध कर सोता है मुआ। जब उठकर पेशाब कराती हूँ तो सन्नाटा खीच लेता है, और वैसे सारी रात मूतता रहता है। सारा बिस्तरा पेशाब से भीग गया है। कहाँ मैं लेटूं, कहाँ इसे लिटाऊँ ? जाड़े की रात और यह गीला-गीला बिस्तरा—कैसे नींद आए ? कोई कहाँ तक जगे। ले, आज मैं भी तुझे ऐसे मे ही लेटाऊँगी, चिल्ला जितना चिल्लाना हो। दिन मे घर के कामो से चैन न मिले और रात मे तू मुझे खा।"

अन्नदा ने पहुँचकर देखा कि मुन्ना पैताने की ओर पडा चिल्ला रहा था और बहू बिस्तरा उलट-पुलट कर कहीं सूखी जगह देखने को खीझ रही थी। अन्नदा ने लपक कर मुन्ने को उठा लिया और उसे चुमकारती हुई

बोली—"बहू! इस तरह कहीं बच्चे को झिडका जाता है। इस अनजान को क्या पता! देखो न, डर के मारे इसकी घिग्घी बँध गई है। टट्टी-पेशाब से इतनी घिन करोगी तो कैसे चलेगा?"

बहू और भभकी—"सब कुछ चलने का सेहरा मेरे ही सिर बँधा है? मैंने तुम्हें बुलाया तो नहीं। रोना था तो रोने देती। थोडी देर मे अपने आप चुप हो जाता।"—रात के उस सन्नाटे मे बहू की यह दहाड सुनकर गोपाल जग गया तो अपने मन में क्या सोचेगा? यही न, कि माँ ने जाने क्या झझट लगा रक्खा है? रात भी चैन से नही बीतने पाती। जब देखो एक न एक झझट लगा ही रहता है। मन मे यह विचार आते ही अन्नदा को लगा कि नाहक ही उसने यह छत्ता छेड दिया।

मुन्ना अन्नदा की गोद में आकर चुप हो गया था। वह आगे कुछ न बोली। मुन्ने को गोद मे लिए चुप-चाप आकर अपनी खाट पर फिर पड रही। रात अभी काफी बाकी थी। सोच रही थी, नीद आ जाए तो मन हल्का हो जाय।

मुन्ना लेटते ही सो गया। अन्नदा को नीद तो न आई, पर मुन्ने को अपने पास सुलाने से जो एक विचित्र अनुभूति उसे हुई, इससे उसकी वे यादें जरूर उभर आई, जो गोपाल के बचपन के साथ जुड़ी थी।

उसने लिहाफ पलट कर मुन्ने का मुँह जरा नजदीक से झाँका—गोपाल, बिल्कुल मेरे गोपाल जैसा ही तो है। ठीक ऐसे ही गोपाल भी पडा रहता था मेरी गोद मे। नीद आई तो पाटी से लग कर सो गया और भूख लगी तो पलट कर छाती से लग गया। कितनी निराशा के बाद गोपाल मुझे मिला था। मेरा सारा सुख इसी में समा गया था। इसके सुख के लिए मैं हर दुख को उठाने को तैयार थी। तो क्या यह सोचकर कि यह बडा होकर मुझे सुख देगा? क्या मेरी ममता भविष्य मे कुछ पाने के लिए थी? मा की ममता निष्काम होती है, ऐसी कल्पना स्वप्न में भी न थी। ऐसा सोचकर माँ बच्चे को अपना क्या प्यार देगी? वह प्यार करती है, वह दु ख उठाती है, वह अपने बच्चे को हर तरह का आराम देती है, केवल इसलिए कि वह उसका खून है। उसका सारा अपनत्व उस बच्चे में समाया रहता

है। आज भले ही अपनी इस अवस्था मे मैं गोपाल के व्यवहार की तुलना अपने कर्त्तव्यों से करूँ कि क्या यही सब सुनने के लिए मैंने उसे पाला था? पर, उस वक्त ऐसी बात सोची भी नही जा सकती थी।

जिस गोपाल को मैंने अपना सारा अपनत्व देकर पाला। जिसको पाने के लिए मैं जल के बिना मछली-सी तडपती रही, जो मेरी अँधेरी जिन्दगी मे रोशनी बनकर आया, जिसने मेरा सुहाग सफल कर दिया—वही गोपाल अब मेरा नही है। उस पर मेरा कोई अधिकार नही है।

जब वह छोटा-सा था तो कैसी टप्-टप् बातें करता था। मेरे बिना इसे चैन ही नहीं पडता था। कहीं से आता और मुझे घर में न पाता तो बौखला उठता। खाना चाहिए तो मेरे हाथ से, पानी चाहिए तो मेरे हाथ मे। मैं किसी काम मे लगी रहूँ और कह दूँ कि बेटा तू ही लेकर खा ले, मजाल थी कि वैसा करे। भूखा रह लेना मंजूर था, पर अपने हाथ से एक गिलास पानी भी नही लेता था। उमर बढ़ती गई तो बचपना भी बढ़ता गया। काफी बडा हो गया था, मगर मुझे कही बैठी देखता तो आकर मेरी गोद मे सिर रखकर लेट जाता। मैं जब डाँटती कि पगले यह क्या कर रहा है? अब तेरा इस तरह मेरी गोद मे लेटना अच्छा नहीं लगता। चल परे हो। अब तू कोई दूध पीता बच्चा है?

मेरी झिडकी सुनकर हँस देता, कहता—"माँ, मुझे अच्छा लगता है। मैं तो लेटूँगा, तू दूध पिला तो अब भी पी लूँ।"

मैं हँसकर उसे अलग ठेल देती। ऐसा था मेरा गोपाल। यही गोपाल आज कैसा हो गया है? जिसे कल मेरे बिना चैन नही आता था, वही आज मुझसे बेचैन हो उठा है। वक्त की खूबी है। अब यह मेरा बेटा होने की अपेक्षा इस बहू का पति अधिक है। बहू को मानने के लिए क्या यह जरूरी है कि मुझे मानें ही नहीं, जानें ही नहीं। मेरे जिस गोपाल को बहू आज अपना सर्वस्व मानकर अपना रही है, वह है तो मेरा ही। मेरे से ही तो वह आया है, ऐसा बहू क्यों भूल जाती है? मुझे अलग देखकर, समझकर, बहू क्या पाना चाहती है? अभी उसे क्या नहीं मिला है, जिसे पाने के लिए वह इस घर के गौरव को भी नहीं समझती? अन्नदा का मन इन विचारों के बवडर में और व्यथित हो गया। जिन्दगी मे जो एक मधुर सपना उसने

है। आज भले ही अपनी इस अवस्था मे मैं गोपाल के व्यवहार की तुलना अपने कर्त्तव्यों से करूँ कि क्या यही सब सुनने के लिए मैंने उसे पाला था? पर, उस वक्त ऐसी बात सोची भी नहीं जा सकती थी।

जिस गोपाल को मैंने अपना सारा अपनत्व देकर पाला। जिसको पाने के लिए मैं जल के बिना मछली-सी तडपती रही, जो मेरी अँधेरी जिन्दगी मे रोशनी बनकर आया, जिसने मेरा सुहाग सफल कर दिया—वही गोपाल अब मेरा नही है। उस पर मेरा कोई अधिकार नही है।

जब वह छोटा-सा था तो कैसी टप्-टप् बातें करता था। मेरे बिना इसे चैन ही नही पडता था। कही से आता और मुझे घर मे न पाता तो बौखला उठता। खाना चाहिए तो मेरे हाथ से, पानी चाहिए तो मेरे हाथ से। मैं किसी काम मे लगी रहूँ और कह दूँ कि बेटा तू ही लेकर खा ले, मजाल थी कि वैसा करे। भूखा रह लेना मजूर था, पर अपने हाथ से एक गिलास पानी भी नही लेता था। उमर बढ़ती गई तो बचपना भी बढता गया। काफी बडा हो गया था, मगर मुझे कही बैठी देखता तो आकर मेरी गोद मे सिर रखकर लेट जाता। मैं जब डाँटती कि पगले यह क्या कर रहा है? अब तेरा इस तरह मेरी गोद मे लेटना अच्छा नहीं लगता। चल परे हो। अब तू कोई दूध पीता बच्चा है?

मेरी झिडकी सुनकर हँस देता, कहता—"माँ, मुझे अच्छा लगता है। मैं तो लेटूँगा, तू दूध पिला तो अब भी पी लूँ।"

मैं हँसकर उसे अलग ठेल देती। ऐसा था मेरा गोपाल। यही गोपाल आज कैसा हो गया है? जिसे कल मेरे बिना चैन नहीं आता था, वही आज मुझसे बेचैन हो उठा है। वक्त की खूबी है। अब यह मेरा बेटा होने की अपेक्षा इस बहू का पति अधिक है। बहू को मानने के लिए क्या यह जरूरी है कि मुझे माने ही नहीं, जाने ही नहीं। मेरे जिस गोपाल को बहू आज अपना सर्वस्व मानकर अपना रही है, वह है तो मेरा ही। मेरे मे ही तो वह आया है, ऐसा बहू क्यों भूल जाती है? मुझे अलग देखकर, समझकर, बहू क्या पाना चाहती है? अभी उसे क्या नहीं मिला है, जिसे पाने के लिए वह इस घर के गौरव को भी नहीं समझती? अन्नदा का मन इन विचारों के बवंडर मे और व्यथित हो गया। जिन्दगी मे जो एक मधुर सपना उसने

देखा था, उसकी मधुरता में तनाव आ गया था। वह स्वप्न शीशे-सा चटक कर टूट जाना चाहता है। अपने इन तर्कों में वह स्वयं ही उलझ गई।

दिन बीतते गए। मदा पैदा हुई। गोपाल बड़ा हुआ। मेरे सास नहीं थी, इसलिए जल्दी ही सास बनने का मोह मुझे जगा। गोपाल की शादी की। तीन साल बाद गवना लाई। फूल-सी यह बहू डोले से उतरी। मैंने इसे थाम लिया, सहारा दिया। मद-मद गति से चल कर यह घर मे घुसी। उस वक्त मेरी खुशी का ठिकाना न था। एक दिन मै भी इस घर मे इसी तरह उतरी थी, पर मुझे अपना कोई उतारने वाला न था। घर पुराना था, खपरैल पुराना था। पर बहू के आने पर स्थिति दूसरी थी। यह घर भरा था। सास-ससुर-ननद सब थे। बहू नई थी तो घर भी नया था। मैं फूली-फूली सी घर में घूम रही थी। मेरा घर भर गया था। मेरा मन भर गया था। बहू की चुप्पी को मैंने उसका सकोची स्वभाव समझा। उसे किसी प्रकार की तकलीफ न हो, इसका मैं बराबर ध्यान रखती। वह अपने माँ-बाप को छोड़कर आई है। यहाँ परायापन न महसूस करे, इस-लिए मैंने उसे माँ का प्यार दिया। उसके मन को कभी किसी प्रकार की तकलीफ न महसूस हो, इसका मैंने बराबर ध्यान रक्खा।

बहू के आ जाने पर भी मैं गोपाल के लिए सब कुछ थी। खाना बहू बनाती। परोस कर खिलाना मुझे पडता। कई बार मैंने उसे डाँटा भी कि जब बहू घर मे है तो सबकी तरह तू भी क्यो नही परोसवा कर खाता? तेरे लिए मैं रसोईदारिन बनी रहूँ, यह ठीक नही।

कभी-कभी मैं जिद्द कर बैठती और उसे खाना देने नहीं जाती तो वह बिना खाए ही रह जाता। कुछ देर बाद जब मैं बहू से पूछती कि गोपाल ने खाना खा लिया तो वह इशारे से सिर हिलाकर इनकार कर देती। मैं सोचती—जिद्दी हो गया है। भूखा रह गया, पर घर आकर खाना नही खाया। ऐसा था यह गोपाल! एक दिन इसके लिए मैं ही सब कुछ थी, पर आज कुछ भी नहीं।

दिन बीत रहे थे कि इन्ही सुख की घड़ियों मे सर्वनाश की बेला आई। घर, खेत, बाग सब कुछ हम अपने गोपाल के लिये बना रहे थे। गृहस्थी की हर जड़ हम अपने खून से सींचकर मजबूत कर रहे थे। हमने

अपनी जिन्दगी बहुत गिरी हालत मे शुरू की थी। हम उठना चाहते थे, उठ रहे थे। ऐसी हालत मे हमे कितनी मुसीबते झेलनी पडी, कितनो का वैर सहना पडा, कितनो की आँखें मे खटक गए, इसका हिसाब नही।

हिसाब लेने वाले उस दिन आये जब गोपाल के बाप हम सब को अधर मे ही छोडकर अचानक चले गये। क्षण-मात्र मे ही सब कुछ समाप्त हो गया। उस अकल्पित घटना मे मेरी कमर टूट गई। मेरी जिन्दगी, मेरी गृहस्थी पर ओला पड गया। उनकी लाश पर मैं सिर पीट कर रोई, पर जब गोपाल फफक कर रोया तो मुझे धक्का लगा। मेरी इस कमजोर टहनी को अगर सहारा न मिला तो उस धक्के को बरदाश्त न कर सकेगी। जो घट गया उनसे भी बडी घटना न हो जाय, इस आशका से मैं काँप उठी। गोपाल को मैंने अपनी छाती से लगा लिया। अब मेरी जिन्दगी का यही सहारा था, हम दोनो एक-दूसरे को धीरज देने को रो रहे थे। यह मदा तब कितनी अबोध थी। जिन्दगी और मौत का फर्क इसे मालूम न था। खाट पर पडे हुए बाप के निर्जीव शरीर को जब इसने देखा तो हमेशा की आदत की तरह लपक कर उनके पास पहुँची। दो तीन बार पुकारा, झकझोरा, पर जब वे हिले नही, बोले नही, तो दौडकर मेरे पास आई। मेरे मुँह को बार-बार हाथ लगा कर पूछती—"माँ काका सो रहे है?" उसके इस भोले सवाल का मैं क्या जवाब देती? मुझे कुछ सूझ ही नही पडता था। उस अबोध बच्ची को मौत की भयकरता कैसे समझाती? उसके भोले मन पर मैं मौत की गभीरता कैसे बैठाती?

मैंने सोचा, यह होनहार होकर रहा। अपने वैधव्य के साथ-साथ मैंने गोपाल के भोले मुँह को देखा। मुझे उनकी ही परछाँई उसमे दिखाई दी। पुत्र पति ही का प्रतिरूप है, ऐसा मुझे लगा। वे पति-रूप मे भले ही गये पर पुत्र-रूप मे तो अब भी मेरे सामने है। मेरा सुहाग चला गया, मेरा सिन्दूर पुछ गया, मेरी चूडियाँ चटक गई, पर मेरी आँखों की ज्योति बनी रही, मेरे घर का चिराग जलता रहा, मेरे बुढापे की लाठी खडी रही।

मैंने सधवा के सब निशान मिटा दिए। मैं विधवा भले ही हो गई, पर मैंने अपने को 'रांड' नही महसूस किया। पति के मर जाने पर औरत को जो एक दर्दनाक 'रँडापा' भोगना पडता है, वह दिन मुझे देखने को न

आयेगा, ऐसा मैंने महसूस किया। 'रांड' शब्द मे जो एक दयनीयता और वेसहारे की चुभन है, वह मुझे न टीमेगी। दूसरे के सहारे जीने के लिए हिन्दू विधवा को जो एक दयनीय, वेवस और बेइज्जत की जिन्दगी बसर करनी पडती है, वैसी स्थिति मेरे सामने न आयेगी। गोपाल जैसा बेटा जिसे हो वह माँ 'रांड' की वेवस, वेसहारा और शर्मनाक जिन्दगी वसर करे, यह विचार मुझे आश्चर्यजनक-सा लगा।

इस घर को वसाने मे जो कधा मैंने पति के साथ लगाया था वही कधा मैं इस बेटे के साथ इस घर को वनाने मे लगा दूंगी।—यह सब सोचकर मैंने अपने को धीरज दिया और उठकर खड़ी हो गई। वह वक्त बैठकर रोने का नही था, वल्कि उनका मुकाबला करने को था जो गोपाल के वाप की मौत को हमारी कमजोरी समझकर हमारी जड़ खोदने आये थे।

एक वार जिन्दगी मे फिर वही तूफान आया जो आज से पच्चीस साल पहले आया था। भाई-पट्टीदारों ने ठान दिया। पार्टी बाँध कर चारों ओर से जकडा। यही मेरी छाती पर मजाक उड़ाते हुए चले जाते। जब चाहते मनमाना नुकसान कर देते। मेरे पास झगड़ने का बल नही था। धीरज का बल लिए मैं सब सहती रही, गोपाल देखता रहा। यह विगड़ा वक्त सब दिन नही रहने का। ये तानेकशी और लाठियों की चमक ऐसी ही नहीं रहेगी, यह मैं समझती थी। वक्त आने पर सब ठडे हो जायेंगे और सब सही राह लग जायेंगे।

दिन बीता। वक्त ने पलटा खाया। लोहा लोहे को काटता है। दुश्मनों की ढलती जवानी से गोपाल की उठती जवानी टकराई। फिर सब ठंडे हो गये। दुश्मन दोस्त हो गए। जो कल मजाक उड़ाकर निकल जाते थे, वही सग-सोहवत को ललकने लगे।

पर हाय रे दुर्भाग्य! मेरा वह स्वप्न आज कहाँ गया? मेरी वह आशायें आज क्यो टूट रही है? मुझे कुछ अंधेरा-अधेरा सा आज क्यो दिखाई दे रहा है? मेरी जिन्दगी मे 'रांड' की विवशता की धुंधली-सी छाया क्यों घर करने लगी है? मेरा मन क्यो बैठा जा रहा है? आज इतने दिनों के वाद मैं क्यों अपने को विधवा महसूस कर रही हूं? मेरा

क्या खो गया है ?—उनके मरने के बाद उठने वाला तूफान मिट गया। बेटा-बेटी, बहू-नाती सब से घर भरा है, फिर क्यों मेरे मन मे यह होता जा रहा है कि मैं अब कुछ नही। मुझे दूसरे की दया पर जीना पड़ेगा, दूसरे की इच्छा पर चलना पडेगा। मेरा अपना कोई मान नही। दूसरों के मान के लिए अपने आत्म-सम्मान को भूल जाना होगा।—इन मर्मघाती विचारों के प्रवाह मे वह झुंझला उठी। उसे ऐसा लगा जैसे उसके सीने पर एक बहुत बडा पत्थर पडा है। उसकी साँस फूलने-सी लगी। उसका मन बैठा-बैठा-सा होने लगा। उसे बडी बेचैनी-सी महसूस हुई।

इतने मे ही मुन्ना रो पडा। उसे भूख लगी थी, वह अन्नदा की छाती चूस रहा था, पर उन सूखे स्तनों मे दूध कहाँ। वह खीझ कर चिल्ला उठा। मुन्ने की इस चिल्लाहट ने अन्नदा को जैसे जीवन दिया। अमलकारी विचारों का जो पत्थर उसके सीने पर रक्खा था, वह मुन्ने की चिल्लाहट से खिसक गया। अन्नदा सब कुछ एकबारगी भूल कर मुन्ने को पुचकारने लगी, जब वह किसी तरह चुप न हुआ तो ले जा कर बहू के पास लेटा आई।

गाँव के बाहर जुलाहों की बस्ती से मुर्गे की आवाज आई—"कु··· कु···डुं कूं ऊँ ऊँ"

अन्नदा ने आसमान की ओर देखा। सवेरा हो गया था। सारी रात उसने आँखों मे काट दी थी। कितनी भयंकर रात थी। सारा विगत जैसे करवट बदल कर अपनी कहानी दोहरा चुका था। उसे ऐसा लगा जैसे यह सब वह स्वय नहीं सोच रही थी, बल्कि वह सब एक स्वप्न था जो बरबस आँखों के सामने घूम गया था। भला इस प्रकार इतना कौन सोच सकता था, चेन रहते हुए?

अन्नदा किवाड खोलकर बाहर आई। पूरब मे दूर क्षितिज मे पौ फट रही थी। भोर की ठंडी हवा से उसे कुछ कँपकँपी जरूर महसूस हुई, मगर

इससे उसके दिमाग को सहलाहट मिली। उसने कुछ ताजगी महसूस की। उसे लगा जैसे एक मर्मान्तिक घुटन से राहत मिली हो। उसने अपने को कुछ हल्का, कुछ स्वस्थ महसूस किया।

गोपाल ओसारे में अभी निश्चिन्त सो रहा था। अन्नदा का मन हुआ कि उसे जगाएगा। उससे दो बातें करे। कल तीसरे पहर से ही वह उससे बोला नहीं। आज शायद वह अपनी कल की भूल को महसूस करे और कुछ कहे क्योंकि वह जानती थी कि गोपाल अर्न्तमन से वैसा नही है। लेकिन फर सोचा—सोने दो। कच्ची नीद जगाना ठीक नही।

वह चुपचाप मडइया मे चली गई। अलाव को खुरहार कर देखा। शाम को गढे मे दबाई हुई कडे की आग अब भी राख की पर्तो मे छिपी थी। उसने ऊपर की राख झाड दी, कडे का अगार चमक उठा। सोचा—मन की भी ठीक यही गति है। विषाद की पर्तें मन को इसी तरह धूमिल कर देती है। थोड़ा-सा कुरेद कर विषाद को भुला देने से मन इसी प्रकार निर्मल होकर चमक उठता है। कल क्या हुआ था, यह सब भूल जाने से उसके मन का अंगार चमक उठा।

थोड़ा-सा फूस रख कर उसने जो फूक मारी तो आग भक् से लहक उठी। उसने आवाज दी—"गोपाल !···मदा !···बहू !"—सब सो रहे थे। न कोई बोला, न कोई आया। वह अकेली ही बैठी रही।

जब थोड़ा धुंधलका मिटा और उजेला छिटका तो गोपाल उठा। उसकी रोज की आदत थी कि वह उठकर अलाव के पास कुछ देर बैठता था, माँ से घर-गृहस्थी की कुछ बाते करता था। आज भी उसने उठते ही अलाव को जलते देखा, माँ को बैठी देखा, पर रोज जैसा उठ कर गया नहीं। फिर लेट गया और कुछ देर बाद उठ कर नित्य-कर्म को चला गया।

अन्नदा बैठी रही। कुछ देर बाद मदा भी आ गई। मुन्ना शायद सो रहा था। बहू बर्तन लेकर माँजने बाहर आई। अन्नदा ने मदा से कहा—"देख, तेरी भाभी बर्तन माँजने जा रही है, जा तू उन्हे धो ले। काम हल्का हो जायगा। कुछ करेगी नही तो सीखेगी कैसे—जा, उठ।"

काम को अगर बोझ न माना जाय तो उसे करने मे मन को एक

प्रकार का आनन्द मिलता है। मदा तो चाहती थी कि वह रसोई के कामो को सीखे। दो एक बार रसोई मे गई भी थी। नए-नए हाथ से कुछ खराब होने पर उसे भाभी की झिडकियाँ भी सहनी पडी थीं। तब से उसकी सहज हिम्मत नही होती थी कि भाभी के साथ मिलकर काम करे। आज माँ के कहने से उसका मन फिर उभरा और वह उत्साह से चली।

वह जहाँ वर्तन मांज रही थी, मदा बिना किसी झिझक के वहाँ पहुँच गई। बहू जली हुई बटलोई को माँजने मे उलझ रही थी। मदा चुपचाप बैठ गई और कुछ बर्तनो को लेकर धोने लगी।

बहू का ध्यान टूटा। तुनक कर बोली—"अच्छा, नन्दरानी है!"

बहू जब बहुत खुश रहती तो मदा कह कर बुलाती थी। पर व्यग्य मे बोलने के लिए वह मदा को 'नन्दरानी' कहती थी। मदा शुरू मे दो एक बार चिढी थी। माँ से शिकायत भी की थी। बहू का यह व्यग्य अन्नदा के मन से छिपा न रहा, फिर भी उसने मदा को ही कहा था—"तो इसमे चिढने की कौन-सी बात है रे! *आजकल तो बहुये अपनी ननदों को* रिरकार कर पुकारती है। तू तो भाग्यशाली है जो बहू तेरा नाम लेकर नही बुलाती। तुझे प्यार से, आदर से, 'नन्दरानी' कहती है। इसमे तुझे खुश होना चाहिए।"

मदा ने जवाब दिया था—"मा, मै भाभी से उम्र मे बडी नहीं हूँ जो मुझे इतना आदर दें कि मेरा नाम ही न ले। जरा कभी बोलते सुनो तो पता लगे कि 'नन्दरानी' कहते वक्त कैसा मुंह बनता है। मुझे ऐसा आदर नही चाहिए।"

अन्नदा ने डाँट दिया—"अच्छा पुरखिन मत बन। मान ले, तेरा मजाक ही उडाती है तो भी क्या? गाली तो नही देती। मजाक का ही आदर सही। तू चिढा ही मत कर। नन्द-भौजाई का मजाक चलता है।"

मंदा ने माँ का कहना माना। उसने चिढना ही नही छोड दिया बल्कि जब कभी बहू उसका नाम लेकर सहज ही बुलाती तो वह मुंह पर अँगुली रखकर तुरन्त कहती—"श् श्! भाभी! मेरा नाम ले लिया। बडा बुरा किया। इसमें तुम्हे पाप लगेगा। देखो, जैसे भइया का नाम

हूँ तो हाथ नचा कर कभी इधर कूदती हो, कभी उधर। कहती हो, 'यहाँ गीला हो गया, यहाँ पोतना ही नही पडा, यहाँ जूठन ही नही साफ हुआ।' चाहे कितना अच्छा क्यों न पुता रहे, मगर तुम पोतना लेकर फिर जुट जाती हो। दस बात ऊपर से सुनाती हो। यही हाल रसोई मे जाने पर होती है। दो रोटी बनाई नही कि तुम्हारी महाभारत ही शुरू हो जाती है—'यह जली है, वह कच्ची है, यह मोटी है, वह पतली है।' बर्तनों का तो इससे भी बुरा हाल है। जब कभी किसी बर्तन को माँज कर रक्खा होगा तो दुनिया भर का नुक्स निकाला होगा, एक-एक कोना उलट-पुलट कर झाँका होगा। चाहे कही कालिख लगी रहे या नही, मगर तुम फिर माजने बैठ जाती हो। यह सब दिखाने के लिए ही तो करती हो न, कि पास-पडोसी देखें और तुमसे दुनियाँ भर की लल्लो-चप्पो करें। कहे, 'हाय-हाय ! सारा काज बेचारी बहू करती है। कुम्हार का गधा हो रही है।"

धूल पैरों मे रहती है, पर ज्यादा रौंदो तो वह माथे पर चढ जाती है। कभी की न वोलने वाली मदा का मुँह आज जाने कैसे पहली बार इतना खुला था। बहू अवाक् ! हाथ थम गए, मुह ऊपर उठाया। लगा, जैसे उसे किसी ने से पिटने से पीट दिया हो और अब उसकी प्रतिक्रिया देखने के लिए खडा हो। वह उत्तर कुछ न दे सकी, पर सुनकर उलटे हाथों अपना माथा ठोक लिया और ठीक से बैठती हुई एक लम्बी साँस-सी लेकर केवल इतना कह सकी —"बाप रे बाप ! अब देखो !"

पडित रामजियावन की बहू सुखदेई, जो कहीं से आ रही थी, वह और मदा की बतकही सुनकर खड़ी हो गई। पडोसियों के घर झगडा मचे तो मजा आता है। वे इस झगड़े को ऐसा गम्भीर होकर देखती है जैसे वे खुद दूध की धोई हों, उनके घर कभी रार हो नहीं मचती। सुखदेई भी मजा लेने को खड़ी हो गई। उस वक्त वह भूल गई कि बहू के घर से तो खेत के मामले को लेकर हमारा घोड़ा-भैसा वैर चला आ रहा है। न लेना न देना, न बोल न चाल।

बहू ने सामने सुखदेई को देखा तो वह भी अपना-पराया भूल गई। उसे उस वक्त सुखदेई ही सबसे अधिक आत्मीय जान पडी। उन्हीं को सम्बोधित कर बोली—"सुन लो अइया ! तुम भी सुन लो। देखो न, कैसा

चमक-चमक कर बोल रही है। जैसे इसी की कमाई खाती हूँ। कोई न देखे तो यही कहे कि भौजाई ही कर्कशा होगी। पर तुम तो अपनी आँखों से ही देख रही हो न ? जरा इसकी बोल सुनो !"

सुखदेई ने बहू की बात सच मानने के अन्दाज मे सिर हिलाया और इधर-उधर ताक कर धीरे से बोली—"जैसी माई वैसी धिया।"

सुखदेई ने यह बात कह तो दी, साथ ही साथ डर भी रही थी कि कहीं अन्नदा न सुन ले।

वह शह पाकर और भडक उठी—"मुझे न माँ का डर है न धिया का। मैं कहीं से भगा कर नहीं लाई गई हूँ जो इन इन माँ-बेटी के नीचे मेरी चुटिया दबी रहे।"—फिर मदा को सम्बोधित कर बोली—"यह तेहा दिखाना अपने भतार को जब ब्याह के जाना तब। मैं तेरी बाँदी-चेरी नहीं हूँ। खबरदार ! जो आज से ऐसी टिर्र-पिर्र की।"

मदा ने कुछ झूठ नहीं कहा था और न ही उसके स्वर मे भाभी के प्रति कुछ असम्मान ही प्रस्फुटित हुआ था, पर उसकी बात सुन कर भाभी इतना चढ जायेंगी, ऐसी आशा उसे नही थी। सुखदेई को समझाकर भाभी जो कह रही थी, उसका तो इसे बुरा लगा ही, पर रोना तो तब आया जब भाभी ने एकदम कह दिया, 'यह तेहा दिखाना अपने भतार को जब ब्याह के जाना तब।'

'भतार' किसे कहते हैं ? ब्याह के बाद कही और जाना होगा ? ऐसा सोचने और समझने का मौका अभी उसके जीवन मे नही आया था। भाई भौजाई, माँ के अतिरिक्त और भी कोई रिश्ता है, इस घर के अतिरिक्त कहीं और भी घर होगा ?—ऐसा ख्याल आने का सवाल ही अभी उसके सामने नही था। लेकिन भाभी ने आज यह कह बात कर उसके मन को एकायक रुला दिया। यद्यपि इतनी भोली वह नही थी कि ब्याह की बातें जानती ही न थी, पर वैसा सुनकर उसे सह सकने की कठोरता उसके मन में अभी नही थी।

मदा रोती हुई वहा से चली आई। हँसती हुई गई थी, रोती हुई आई। मुन्ना जग गया था। अन्नदा उसे लेकर बाहर आ ही रही थी कि रोती हुई मदा मिली। मुन्ने को कन्धे से चिपकाए हुए ही अन्नदा ने पूछा

—"क्या हुआ ? क्यों रो रही है ?"

मंदा कुछ न बोली। वह माँ के सामने से ही होकर आँचल से आंसू पोछती हुई सीधी घर मे चली गई। अन्नदा ने पलट कर फिर पूछा—"मदा ! तुझसे ही पूछ रही हूँ। क्या हुआ, क्यों रो रही है ? बोल न !"

मदा इस बार भी कुछ न बोली और घर में घुसती हुई आँखों से ओझल हो गई।

अन्नदा हैरान !—क्या हुआ जो रो रही है और बताती भी नहीं। वह आगे बढी। बहू के पास आई, देखा तो अभी आधे से भी ज्यादा बर्तन ज्यों के त्यों पडे थे। इतनी देर हो गई और अभी तक बर्तन नहीं मंजे ?—बहू ने भी अन्नदा को देखा, पर बोली नहीं। वह उसी तरह काम में लगी रही। अन्नदा को यह भाँपते देर न लगी कि कुछ टुन-पुन हुई है। उसने पूछा—"बहू ! मदा क्यो रो रही है ?"

बहू, वैसे ही बर्तन माँजती रही। जैसे उसे इस सवाल से कोई मतलब हो नहीं।

अन्नदा ने जरा जोर से कहा—"बहू ! तुमसे ही पूछ रही हूँ। मदा क्यों रो रही है ? क्या तुझसे कुछ बात हुई ?"

बहू ने बिना सिर उठाये उपेक्षा से जवाब दिया—"अपनी बिटिया-रानी से ही पूछ लो न। मैं क्या बताऊँ ?"

"वह तो रो रही है। पूछने पर कुछ बताया नही, इसीलिए तो तुम से पूछ रही हूँ।"—अन्नदा ने बड़ी सरलता से कहा।

मन का पाप छिपता नही। बहू ने सिर उठाकर कहा—"फिर तुम यही समझ कर आई हो न, कि मैंने ही कुछ कहा होगा। जब मन में ऐसी बात को लेकर पूछने आई हो तो मैं क्या बताऊँ ? तुम जो समझती हो वह ठीक है।"

अन्नदा को वहू का यह जवाब बडा बेढंगा लगा। कुछ गुस्से से बोली—'क्यों इतना प्रपच रचती है ? तुझसे पूछ रही हूँ, इसका मतलब तूने यह कैसे लगा लिया कि मैं समझ रही हूँ कि तूने मारा होगा या गाली दी होगी ? वह तेरे पास आई थी। अब तुझसे न पूछ कर हवा से पूछूँ, पेड़ों से पूछूँ ? देख रही हूँ आजकल तेरा दिमाग बहुत चढ गया है। सीधे

मुँह बोलती ही नही। जब देखो तब तुनक-मिजाजी। क्यों इतना दिमाग चढ गया है ?"

अन्नदा की बात काटकर बहू बोली—"पहले बिटिया रानी को लड़ने भेजा था, अब खुद आ गई हो। आज तुम सब यह बर्तन माँजने दोगी या नही ?"

"मांजो-मांजो। मैं लड़ने नही आई हूँ और न ही उसे लडने भेजा था। लेकिन, अगर वह लडी होगी तो मै आज उसे बताती हूँ।"—

यह कहती हुई अन्नदा घर मे चली। रोना-पीटना और कलह उसे प्रिय नही था और न ही उसने अपनी जिन्दगी मे ऐसा मौका ही आने दिया। आज सवेरे से ही कलह शुरू हो गया, यह उसे किसी प्रकार भी अच्छा न लगा। वह सीधे मदा के पास आई। मदा औंधे मुह खाट पर पडी अब भी सिसक रही थी।

अन्नदा ने झकझोर कर पूछा—"बोलती क्यो नही? क्यो रो रही है?" मन्दा अब भी चुप ही रही।

अन्नदा अपने गुस्से को अब न रोक सकी। मंदा की पीठ पर एक थप्पड जमाते हुए क्रोध से बोली—"बोल, नही तो आज खाल उधेड़ दूँगी। तुझे पता है कि मैं मारती नही। पर आज की मार याद करेगी, या तो बता। इस तरह सिसकना मुझे अच्छा नही लगता।"

मदा अब पलट कर उतान हो गई। सिसकियो के बीच बोली—"मारो मां! खूब मारो! जब मैं रो रही हूँ तो जी भर कर रोने दो। क्या बताऊँ कि क्यो रो रही हूँ? तुम सुनकर क्या करोगी? मुझे ही सुन कर रोने दो। तुमने कल कहा था न कि तेरा डरना और मेरा रोना साथ-साथ चलेगा? पर मैं अब कह रही हूँ कि मेरा रोना और तुम्हारा डरना साथ-साथ चलेगा। अभी तुम गुस्से में भले ही मुझे मारो, पर बाद में पछताओगी कि नाहक बेटी को मारा।"

बेटी की ये बातें सुनकर अन्नदा का मन सचमुच भर आया। अनजाने ही उनकी आँखें डबडबा आईं और जब उसने पलक झपकायी तो आँखों में छलछलाए दो बूंद आँसू पलकों का दबाव पाकर टप् से चू पड़े। फिर भी उसने अपने को संयत कर कहा—"क्या बहू से कुछ बात

हो गई ?"

"क्या हो गई माँ ! क्या बताऊँ, क्या बात हो गई ? हर झगडे की कुछ न कुछ जड होती है, पर बिना जड के झगड़े को मैं क्या बताऊँ ? किसने क्या कहा और किसका कसूर है ? यह न पूछना ही अच्छा । इन बातों पर ज्यादा ध्यान न दो माँ ! यह सब ऐसे ही चलता रहेगा । कोई बात मन को लग गई, मेरा मन भर आया । दो आँसू निकल गए, मन अपने आप हल्का हो जायेगा ।"

बारह-तेरह साल की यह लडकी जो कल तक ठीक से बोलती भी न थी, आज मुझे सिखावन दे रही है ।—अन्नदा ने मन ही मन सोचा, ठीक है, बिना दुख का बोझ पडे आदमी मे गभीरता आती ही नहीं । उसका सारा बचपना, उसकी सारी चचलता, उसकी वाचालता, दु ख के एक हल्के झोंके से ही गभीरता के अगम सागर मे डूब जाती है ।

बात आई-गई हो गई । बातें इस तरह जरूर समाप्त हो जाती हैं, पर कलह का बीज, जो जड पकड़ लेता है, उसके एक अँखुए को आज भले ही काट दिया जाय, पर कल दूसरा अँखुआ नही फूटेगा, इसकी जिम्मेदारी कौन ले सकता है ।

घर मे जब माँ-बेटी की ये बातें हो रही थी तो गोपाल न जाने कब का आकर ओसारे में खाट पर बैठा, सब कुछ स्पष्ट सुन रहा था । आज भी कुछ झझट हुआ है, उसे यह समझते देर न लगी । एक सनक मे आकर कल वह माँ को 'राँड' कह बैठा, उसका दुख अभी पूरी तरह धुल भी न पाया था कि आज एक और काण्ड की आशका सामने आकर खडी हो गई । खुश होता हुआ मन फिर एक कटुता मे भर गया । वह उदास-सा खाट पर बेहगा पड रहा और गहरे सोच मे डूब गया ।

वह बर्तन माँज कर घर मे गई । अन्नदा ने मुन्ने को बहू को दे दिया दूध पिलाने को । मदा किसी काम मे बाहर चली गई । कुछ देर बाद अन्नदा भी घर से निकली । ओसारे मे गोपाल को इस प्रकार देखा तो बोली—"क्यों गोपाल ! कैसे पडा है ?"

गोपाल हडबडा कर उठ बैठा । असल मे वह अपनी उदासी माँ पर नहीं जाहिर करना चाहता था । उठते हुए बोला—"कुछ नहीं माँ ! बस

ऐसे ही खेत से आया और लेट गया।"—यह कहते हुए वह घर में चला गया। माँ उसकी कमजोरी भाँप न ले, इसलिए वह उसके सामने अधिक रुक न सका।

गोपाल घर मे गया तो उस समय बहू मुन्ने को गोद मे लिए बैठी दूध पिला रही थी। गोपाल को देखते ही उसने अपना आँचल थोडा ठीक किया और बोली—"कहाँ गए थे सबेरे-सबेरे ? कुछ नाश्ता-पानी कर लो, इतनी देर हो गई है ?"

"ले आओ।"—कह कर गोपाल खाट पर बैठ गया।

मुन्ने को गोपाल के पास लिटा कर बहू नाश्ता लाने गई। अक्सर गोपाल ऐसे वक्त मुन्ने को लेकर प्यार करने लगता था, पर आज उस का मन ठीक नही था। मुन्ना लेटे-लेटे रोने लगा। गोपाल सुनता रहा, पर उसे गोद मे न उठाया। इतने मे बहू नाश्ता लेकर आयी और गोपाल को देते हुए बोली—"यही मुन्ना रो रहा है और तुम चुप बैठे हो। उठा नही सकते ?"

गोपाल ने उसकी बात पर ध्यान नही दिया। उसका मन कही और ही उलझा था। चबैना की एक फकी मुँह मे डालते हुए बोला—"आज फिर तुमसे और माँ से कुछ बात हुई क्या ?"

वहू ने वैसे ही लापरवाही से जवाव दिया—"उन माँ-बेटी का तो यह रोज का काम है। तुम कहाँ तक कान दोगे ? यह तो यों चलता ही रहेगा। अपने पेट का जाया ही सब को प्यारा होता है। मै आयी हू पराये घर से, मुझसे तो एक न एक बखेड़ा लगा ही रहेगा।"

अक्सर ऐसी ही वातें करके बहू गोपाल के मन के भाव को वदलती थी। यह पक्की वात है कि किसी भी झूठी वात को सच होने का दावा वार-वार करते रहने से वह वात सच से भी ज्यादा सच लगने लगती है। गोपाल बहू की वातों को सच मान लेता था।

जिस माँ के पेट से वह जन्मा। जिसकी आँचल की छाया और प्यार में पलकर उसने होश सँभाला, इतना बड़ा हुआ, आदमी बना। जिस बहन को उसने अपनी गोद में खेलाया, जिसकी नस-नस को वह पहचानता है? क्या सारी गलतियाँ अब वही दोनों करती है?—ऐसे सवाल उसके मन में कभी न उठते रहे हों, ऐसी बात नहीं। ये सवाल उसके मन में उठते थे, वह उन पर सोचता भी था। मगर पत्नी के प्यार में वह केवल सोचकर ही रह जाता था। बल्कि होता यह था कि बहू के विचारों का पलड़ा ज्यादा भारी हो जाता था और उसके अपने विचार उटंग होकर रह जाते थे। पर आज जब बहू ने कहा कि, 'तुम कहां तक कान दोगे?' तो यह सुनकर वह चुप न रह सका। बोला—'कान देने की बात कैसे नहीं है। यह रोज-रोज का झंझट बुरा है। कौन-सा हिस्सा तुम लोगों को आपस में बाँटना है, जिसके लिए यह चख-चख मची रहती है?"

वह पैर फैलाते हुए बोली—"मैंने तो तुमसे कई बार कह दिया कि मुझसे इन लोगों ही पटेगी नहीं। मैं उठल्लू का चूल्हा नहीं हूं कि जहाँ चाहा वहीं सुलगा दिया। मैं किसी की बातें सहूंगी नहीं। जब किसी से कोई मतलब ही न रहेगा तो अपने आप सब बखेड़ा दूर हो जायेगा।"—यह कह कर वह चुप हो गई। हर विवाद पर उसका एक ही निदान रहता—अलग होने का।

आज गोपाल का मन उखड़ा था। वह संतोषजनक जवाब चाहता था। बोला—"अलग कर दूँ? तुम्हें या माँ-बहन को? शरम नहीं आती तुझे ऐसी बात करते। दुनिया क्या कहेगी? मेरा कोई भाई दूसरा है जिनके सहारे इन्हें छोड़ दूँ? फिर अलग क्या होगा—चूल्हा ही न? घर तो यही रहेगा। ये दोनों तो फिर भी तुम्हारे सामने लड़ने को तैयार रहेंगी। तो क्यों न इन दोनों को ही घर से मार-पीट कर निकाल दें और हम तुम राज्य करें।" कहते हुए गोपाल के माथे पर शिकन पड़ने लगी। पर पत्नी से अपने प्रश्न के उत्तर की अपेक्षा न कर वह कहता ही गया—"लगता है तू मुझे दुनिया में रहने भी न देगी, ऐसा जान पड़ता है। कहती हो न कि पेट का जाया सबको प्यारा होता है। मेरे तुम्हारे बीच जो प्यार चल रहा है, क्या उसमें भी तुम्हारी यह बात लागू होती है? निश्चय ही नहीं। फिर इसका

मतलब यह कि हमारा तुम्हारा प्यार बनावटी है, दिखावटी है। अच्छा हो, हम-तुम ही अलग क्यों न हो जायें।"

गोपाल ने यह बात कही तो एक तर्क से थी और साथ ही हँसी से भी। पर वह यह तर्क और हँसी न सह सकी। उसका पारा यह सुनते ही चढ़ गया। भभककर बोली—"हाँ-हाँ, अलग कर दो। अलग हो जाओ। बस चले तो तलाक दे दो। मैं खेत का खर-खुदुर तो हूँ ही, जब चाहा तब उखाड़ फेंका। तुम माँ-बहन को लेकर राज करो। मैं पराई जाई तो आई ही हूं। यहाँ रहूँ तो सबकी लात-बात सह कर, नहीं तो रास्ता नापूं। यही तो चाहते है सब कोई।"—ज्यों-ज्यों वह बोलती जाती थी, त्यों-त्यों उसका स्वर भी चढता जाता था।

उसकी हँसी जैसी बात को बहू इस अर्थ मे लेकर इतना तूल दे देगी, ऐसी आशा गोपाल को नही थी। उसका जोर-जोर से बोलना सुनकर गोपाल ने कहा—"इतनी चिल्लाती क्यों है? धीरे से बोल न। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?"

लेकिन वह तो धधक रही थी, बोली—"धीरे से क्यो बोलूं? भले कोई सुने। तुम चाहे जो कहते रहो और मैं मुंह सी कर सुनती रहूँ, यही न? ऐसा नही होगा। बोलूंगी, जोर-जोर से बोलूंगी।"

गोपाल को न जाने क्या सूझा। वह भर-भरा कर उठा और बहू को तड़ाक से एक थप्पड़ लगाकर बडबड़ाता हुआ बाहर चला गया— "चिल्लाना ही है तो जरा और जोर से चिल्ला। जीना हराम कर दिया इस कम्बख्त ने।"

जैसे आग में घी पड जाय। थप्पड लगते ही तो बहू आपा भूल गई। इसके बाद जो उसने गँहगट फैलाया तो एक तमाशा ही बन गया। उसकी अचानक चिल्लाहट सुनकर अन्नदा भागी-भागी घर मे आई। बिना बात यह क्षण भर मे क्या हो गया, इसी का उसे आश्चर्य हुआ। आज सवेरे से ही रार मची है, भगवान ही सकुशल दिन बितायें। यही सोचती वह बहू के पास आई। बहू जोर-जोर से रो रही थी और रोने के साथ-साथ अपना दुखड़ा गीतो में इस तरह गा कर रो रही थी, मानो उस पर बहुत बडा दुख पडा हो। मुन्ना इस काण्ड से डर के मारे भौंचक्का हो गया। माँ को

रोते देखा तो वह भी डर के मारे चीख पडा।

अन्नदा ने लपक कर मुन्ने को उसकी गोद से ले लिया और घबरा कर पूछा—"क्या हुआ बहू ? क्या हुआ ?"

जब बहू ने देखा कि सास जी आई हैं तो अपना दुखडा गाना भूल कर लगी हाथ चमका कर कहने—"अब तो छाती ठडी हुई। अब खुश होओ। इसी के लिए तुम कल से ही लगी थी और आज यह करा कर ही छोडा। तुम सब मिलकर एक दिन मझे मरवा डालोगी, यह मैं जानती हूँ। मर्द-मानुस का जब रोज उलटे-सीधे कान भरोगी तो क्या होगा ? अब आई हो थपकी देने—क्या हुआ बहू, क्या हुआ ? जब उनसे खुसुर-फुसुर कर रही थी तब नही सोचा कि क्या होगा ? आज हाथ उठा है, कल डंडा उठेगा और परसो गँडासा। फिर सब ठीक हो जायेगा। तुम्हारी छाती की दाह बुझ जायेगी।"

बहू बडबडाती जा रही थी। अन्नदा को काटो तो खून नही। उसने देखा, यह शोर गुल सुनकर पास-पडोस की औरतें जुट आई हैं और मुँह पर हाथ रखे यह तमाशा, हमारे घर की यह हँसी, इस गभीरता मे देख रही हैं जैसे यह अनहोनी घटना हो गई है। उनके घर मे कभी मियाँ-बीबी मे झगडा ही नही होता।

अन्नदा के मन मे आया कि बहू की बातों का जवाब देने से पहले इन सबकी अच्छी खबर ले। इनमे से वह कितनों को जानती है जिन्होंने साम को डडे से पीटा है। ससुर के आगे की थाली खीच ली। मर्द के सिर पर हाँडी पटक दी। आज सब जुटकर आई है, दूध की धोई होकर मेरे घर का काण्ड देखने।

जब बहू का बडबडाना बन्द न हुआ तो अन्नदा ने भी अपना क्रोध उतारा उन छछूँदरों पर जो बिना बोलाए मेहमान की तरह आकर धीर-गम्भीर बनी यह तमाशा देख रही थी।

अन्नदा का उग्र रूप जब सबने देखा तो भरभरा कर भागी और साथ ही बडबडाती भी गई—*'हो देखा बहिनी ! जैसे इनके घरे कूरिया छाये अहो। चला, यह मट्टर क अहा नाहीं तो का पतोहिया गूटर महति अहै'' ।"*

रोते देखा तो वह भी डर के मारे चीख पड़ा।

अन्नदा ने लपक कर मुन्ने को उसकी गोद से ले लिया और घबरा कर पूछा—'क्या हुआ बहू ? क्या हुआ ?"

जब बहू ने देखा कि सास जी आई हैं तो अपना दुखड़ा गाना भूल कर लगी हाथ चमका कर कहने—"अब तो छाती ठंडी हुई। अब खुश होओ। इसी के लिए तुम कल से ही लगी थीं और आज यह करा कर ही छोड़ा। तुम सब मिलकर एक दिन मुझे मरवा डालोगी, यह मैं जानती हूँ। मर्द-मानुस का जब रोज उलटे-सीधे कान भरोगी तो क्या होगा ? अब आई हो थपकी देने—क्या हुआ बहू, क्या हुआ ? जब उनसे खुसुर-फुसुर कर रही थीं तब नहीं सोचा कि क्या होगा ? आज हाथ उठा है, कल डंडा उठेगा और परसों गँडासा। फिर सब ठीक हो जायेगा। तुम्हारी छाती की दाह बुझ जायेगी।"

वह बडबडाती जा रही थी। अन्नदा को काटो तो खून नहीं। उसने देखा, यह शोर गुल सुनकर पास-पडोस की औरतें जुट आई हैं और मुँह पर हाथ रखे यह तमाशा, हमारे घर की यह हँसी, इस गंभीरता से देख रही है जैसे यह अनहोनी घटना हो गई है। उनके घर में कभी मियाँ-बीबी में झगडा ही नही होता।

अन्नदा के मन में आया कि बहू की बातों का जवाब देने से पहले इन सबकी अच्छी खबर ले। इनमें से वह कितनों को जानती है जिन्होंने सास को डंडे से पीटा है। ससुर के आगे की थाली खींच ली। मर्द के सिर पर हाँडी पटक दी। आज सब जुटकर आई है, दूध की धोई होकर मेरे घर का काण्ड देखने।

जब बहू का बडबडाना बन्द न हुआ तो अन्नदा ने भी अपना क्रोध उतारा उन छछूँदरों पर जो बिना बोलाए मेहमान की तरह आकर धीर-गम्भीर बनी यह तमाशा देख रही थी।

अन्नदा का उग्र रूप जब सबने देखा तो भरभरा कर भागीं और साथ ही बडबडाती भी गईं—'हो देखा बहिनी ! जैसे इनके घरे कुरिया छाये अही। चला, यह सहूर क अहा नाहीं तौ का पतोहिया झूठइ कहति अहै''' ।"

यह काण्ड इस तरह होगा और उसका सारा दोष उसके मत्थे मढा जायेगा, इसकी कल्पना अन्नदा को नही थी। बहू की बात सुनकर वह हत्प्रभ हो गई। कुछ देर मे जब वह स्वस्थ हुई और बहू का बडबडाना कम हुआ तो उसने बड़े थके स्वर से कहा—"बहू कुछ होश मे रह। मुझे तो कुछ पता नही कि कब गोपाल घर मे आया और कब तुझे मारा। तू खुद देख रही है कि वह कल तीसरे पहर से ही मेरे पास नही बैठा और न ही बोला। अभी थोड़ी देर पहले मै बाहर गई कि वह घर मे चला आया। इतने मे मैने उसे क्या सिखा-पढा दिया? क्या बातें कह दी? इतने लोगों के सामने तू जो इतना अनाप-शनाप बक गई, कैसा लाछन लगा गई। इसे सुनकर इन पडोसियों ने क्या सोचा होगा? इसमे मेरी ही बेइज्जती तो नही हुई, इस घर की बेइज्जती हुई है, लोग मुझ पर ही नही हँसेंगे, तुझ पर और गोपाल पर भी हँसेंगे। मतलब, तेरी इस करनी से हमारा घर लोगो की हँसी की चीज बन गया है और वे कोने-अंतरे मे खडी होकर घर के बारे मे खुसुर-फुसुर करती है।

"भाड़ मे जाए घर। जिस घर मे सुख नही, जिस घर मे चैन नही, उस घर की इज्जत रहे या जाए। तुम घर की आरती उतारो। मेरे साथ ऐसा व्यवहार होगा तो मै ज्यादा कहूँगी। मुझे अपने से मतलब है तुम्हारे घर से नही।"—बहू का गुस्सा उस सीमा तक पहुँच गया था जहाँ आदमी का विवेक पूरी तरह नष्ट हो जाता है।

अन्नदा ने दाँतो तले अँगुली दबाई, बोली—"क्या कह रही है? बहू! घर की इज्जत से तुझे क्या? मतलब, यह घर तेरा नही है? पर गोपाल का तो है। तेरी इज्जत और तेरा सुख, गोपाल की इज्जत और सुख के साथ बँधा है—ऐसा समझ, तो भी इस घर की इज्जत तुझे ही रखनी पडेगी बहू! पागल मत बन। गोपाल ही मुझे सबसे प्यारा है, मैं उसी की कसम खाकर कहती हूँ कि मुझे इस बारे में कुछ पता नही। गोपाल मिले तो तेरे सामने ही उससे पूछूँगी कि ऐसी बेवकूफी उसने क्यो की?"

बहू को दाँव मिला। वह और भडकी—"हाँ, हाँ! उनकी ही कसम खाओ। वे मर जायें तो मैं राँड होकर बैठूं। फिर राँडो का राज चले। कसम खाने को और कोई थोड़े ही है?"

बहू की ये बातें सुनते ही अन्नदा ने अपने दोनो कानों मे अँगुली डाल ली और मुन्ने को वही बैठा कर "राम-राम" कहती बाहर भागी। बाहर आकर उसने गहरी साँस ली और सूर्य नारायण की ओर अंजली उठाकर कहा—"हे भगवान! कल्याण करना।"

बहू उस दिन दोपहर का खाना बनाने रसोई में नही गई। नहाई भी नही और न ही खाना खाने उठी। वह चुपचाप जाकर खाट पर पड रही।

अन्नदा जब कहकर थक गई और बहू खाने न उठी तो ऐसे ही प्रसंग पर उसे अपने बचपन की याद आई—

एक बार उसकी माँ ने उसे किसी बात पर पीट दिया था। वह मान करके बैठ गई। सब कह कर थक गये पर वह खाना खाने न उठी। जब उसके काका को पता लगा कि राधा नही खा रही है तो वे खुद उसके पास गए और बोले, "बेटी! एक बात सुनो। अभी तुम बच्ची हो, कम समझोगी; मगर मेरी यह बात सुन रखो। कभी मौका पडने पर इस पर सोचना। मैं यह बात बिना कहे भी तुम्हे उठा कर खाना-खाने को राजी कर सकता हूँ, पर इस बात का अकुर आज मैं तुम्हारे मन मे इसलिए बैठा दे रहा हू कि ज्यो-ज्यो तुम बढती जाओगी त्यो-त्यो मेरी इस बात का पौधा बढता जायेगा और तुम्हे इससे जिन्दगी की तपिश मे कही छाव मिलेगी।

"देखो, दुनिया के अधिकतर झगडे खाने को लेकर ही हुआ करते है। दुनिया के तमाम कारोबार के पीछे इस पेट की ही समस्या है। जब से आदमी का इतिहास शुरू होता है तब से लेकर आदमी का नामो-निशान रहने तक पेट की यह समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी। इस पेट को भरने के लिए बम और बारूद नही चाहिए और न ही सोने-चांदी की सिल्लियाँ—इसे केवल दो मुट्ठी अन्न चाहिए। मतलब यह कि इस मुट्ठी-भर अन्न को

पाने के लिए ही दुनिया का हर अमीर व गरीब झगड रहा है। एक देश दूसरे देश को खसोट रहा है। इन्सान की सारी इच्छाओं और समस्याओ के पीछे इसी पेट को भरने की समस्या है। इसलिए बेटी, अन्न का निरादर नही करना चाहिए। हमारे देश में अन्न को एक देवता का दर्जा मिला है—अन्नदेव ! परोसे हुए भोजन को ग्रहण न करने से अन्नदेव का अपमान होता है। वे रूठ जाते है और फिर उन्हें पाने के लिए आदमी जिन्दगी भर तड़पता है। अन्नदेव की इज्जत करो। वे तुम्हारी इज्जत करेंगे। इसलिए जब कभी तुम्हारी जिन्दगी मे किसी भी कारण से मन दुखने का अवसर आए तो बेटी ! चाहे जिससे रूठना, मगर अन्न से कभी मत रूठना। गुस्से से मन कितना ही भारी क्यों न रहे, चौके में उठकर अन्नदेव को नमस्कार करना। परोसी हुई थाली मे से आदर से उठा कर चाहे दो कौर ही खाना, पर खाना जरूर। किसी और चीज का गुस्सा भोजन पर कभी न उतारना। मान लो, तुम रूठ कर खाना खाने नही उठती तो उस समय तुम्हें भूखा छोड कर घर के और लोग कैसे खाना खा सकेंगे ? नतीजा यह होगा कि सभी बिना खाए रहेंगे। सबको तकलीफ होगी। बना हुआ खाना खराब होगा। कितने श्रम से ईश्वर ने दिया कि रसोई सीझी। परिवार के लोग उठ कर प्रेम से खाना खाते पर एक की नाराजगी से सारी रसोई मे मुर्दनी छा गई। भोजन का अपमान हुआ। मान लो, तुम्हारे घर कोई मेहमान आया। तुमने उसे आदर मे न बुलाया न बैठाया तो वह अपने मन में क्या सोचेगा ? यही न कि वह फिर तुम्हारे यहां कभी न आयेगा। बस, वैसे ही इसे समझो। जब परोसा हुआ भोजन ठुकरा कर सब उठ जायेंगे तो अन्नदेव भी रूठ जायेंगे।"

काका की इतनी सारी बातें मैंने सुनी ज्यादा, उम्र के लिहाज से समझी कम। मगर उनकी एक-एक बात पत्थर की शिला-सी मेरे हृदय में जम गई। तब से लेकर आज तक मेरी जिन्दगी में ऐसे न जाने कितने मौके आए, पर मैं भोजन से नहीं रूठी। अपनी जिन्दगी की खीझ मैंने अपने पर उतारी। भोजन को मैंने सदा पूरे आदर से स्वीकार किया।

अपने बाल्य-जीवन की इस याद की ताल वह बहू के मन से बैठाने लगी। पर यहाँ तो यह हाल था कि—'फूलहिं फलहिं न बेंत, जदपि सुधा

बरसहि जलद।'

बहू ने जो मुँह फुलाया तो सीधी ही होने को नही आ रही थी। सास-ननद से तो रूठी ही थी। गोपाल से भी बोलना वन्द कर दिया।

उस दिन अन्नदा ने खाना बनाया। दोपहर को गोपाल खाना खाने आया तो उसने मां को आवाज दी—"मां! खाना दो।"

गोपाल यह काण्ड करके चला गया था। तब से अब अन्नदा के सामने आया। उसकी आवाज सुनते ही अन्नदा रसोई घर से बाहर आई। गोपाल का सामना होते ही पूछा—"क्यों रे गोपाल, बहू को क्यों मारा?"

गोपाल को जैसे इस सवाल से कोई मतलब ही नहीं, इस अदाज से उसने कहा—"मां, चलो खाना दो।"

"खाना तो दूँगी ही, पर जो पूछ रही हूँ, पहले इसका तो जवाब दे। बहू को क्यो मारा?"—अन्नदा अपने सवाल का जवाब पहले पाना चाहती थी।

"मां! क्या यह जरूरी है कि सारा पहाडा पढ़ूँ? और फिर मारा कहाँ? थोडा सा ठुनक दिया, उसे क्या मारना कहते हैं? चल मुझे खाना दे। मां, जतन से सीची तेरी इस फुलवारी मे यह बनैली आ गई है। लगता है यह इसे उजाड कर ही दम लेगी।"—कह कर वह सीधे रसोई घर में घुस गया।

अन्नदा बाहर बैठी रहती, अब यह सभव न था। वह भी पीछे-पीछे रसोईघर मे जा पहुँची। खाना परोसते हुए उसने कहा—"यह बहुत बुरी बात है गोपाल! अगर कोई बात थी तो तू मुँह से कह कर भी समझा सकता था। हाथ उठाना बुरा है। तू जिसे मारना नही समझता, उसी को लेकर वह गुम-सुम कमरे में पड़ी है। न उठती है न नहाती है। मुन्ना को उसकी देर-सवेर से तकलीफ हो जायेगी, इसकी भी परवाह उसे नही है।"

गोपाल पर मां की इन बातों का जैसे असर ही नही पडा। बहस न करके केवल इतना ही कहा—"भूख लगने पर खुद ही उठेगी।"

अन्नदा ने तुरन्त बात काटी—"तो तेरा मतलब है कि उसे भूख ही

नही लगी होगी ? भूख से मान बड़ा होता है बेटा ! बिना अपना मान पाये वह उठेगी नही।"

"तो तुम्हारा मतलब कि मैं चल कर उसकी आरती उतारूँ ? बिना कसूर यह मुझसे न होगा।"—हाथ मे कौर लेकर गोपाल ने आश्चर्य तथा दृढता से कहा।

"इसमें कोई बुरी बात नही। तेरे से रूठी है तो तू ही मना। हम सब तो कहकर थक गए।"—अन्नदा ने समझाया।

गोपाल खाना खाना बन्द कर बोला—"बुराई है, तभी तो कह रहा हूँ। इससे उसके मन को और बढावा मिलेगा और वह जब चाहे तब अनाप-शनाप बकती रहेगी।"

"फिर तो वह उठेगी नही। एक आदमी घर मे बिना दाना-पानी के पडा रहे और सब लोग उठ कर खाना खायें, यह न होगा। हम सब भी उसके कारण उपवास करेंगे।"—अन्नदा ने यह बात इस ख्याल से कही कि यही सोच कर वह बहू को मनाने को राजी हो जाय।

पर गोपाल ने इसकी कुछ परवाह न की। वह खाना खाकर चला गया। अन्नदा वैसे ही खाना ढँक कर रसोईघर से निकल आई।

अन्नदा का मन दुखी हो गया। जीवन मे जो वह नही करना चाहती थी, वही अब उसे विवशत: करना पड रहा था। गृहस्थी में इस ढंग की बाते पैदा होती है, ऐसा उसके अब तक के जीवन मे अनुभव न हुआ था। एकबारगी ही ऐसी बातें पैदा होने पर उसे बड़ा अटपटा सा लगा।—यही हाल रहा तो बुढापे की यह जिन्दगी कैसे बीतेगी ? यह सवाल बड़ी भयकरता से उसके मन को कचोटने लगा। इस घर की शान्ति और सुख पर कलह की जो कालिमा छा रही थी, उसका धुंधलका उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा था। एक दिन इस घर के लिए उसने अपने को कुछ न समझा, आज उसकी बहू अपने लिए इस घर को कुछ नही समझ रही है। इस २०,२२ साल मे क्या वक्त इतना बदल गया है कि आदमी घर-परिवार से अपने को ज्यादा बड़ा समझे ? अगर यह सही है तो परिवार तथा गृहस्थी की शान्ति और सुख लोगो की अपनी इच्छाओं पर नष्ट हो जायेगा और यह सब इसी तरह चलता रहा तो क्या एक दिन यही

कहानी फिर न दुहराई जायेगी कि—आदमी खाना-बदोश था, इधर-उधर घूमता था, जगलों में रहता था।...

इन्ही ख्यालो मे डूबी अन्नदा चटाई बिछा कर लेट रही। गोपाल बाहर निश्चित आराम कर रहा था। वह सोचता था, कौन इस पचड़े मे बेकार को मरे ? इन बातों के पीछे जितना पडा जाय उतना ही ये तूल पकडती है। बात मे बात निकलती है और फिर बात का बितडा बन जाता है। इसलिए बेहतर है कि चुप रहा जाये। सब ठीक हो जायेगा खुद ही।

शाम को बहू अपने आप उठी। बोली किसी से नही। उठ कर खुद ही इधर-उधर के काम मे लग गई। अन्नदा ने उसे दो बार बुलाया भी, पर बहू ने ध्यान ही नही दिया। मदा से वह जली ही बैठी थी।

शाम को मंदा ने खाना बनाया। गोपाल के खा चुकने पर बहू स्वयं रसोई से खाना लेकर खाने बैठ गई।

गोपाल अलग जाकर माँ से हँस कर बोला—"देखा माँ ! भूख की ताकत। मान किसी-किसी का बडा होता है, भूख सबकी बड़ी होती है।

अन्नदा ने गोपाल को डाँट दिया।

फिर ज्यो का त्यों चलने लगा।

पाँच-सात दिन इसी तरह बीते कि एक दिन गोपाल का साला राजेश आया। वह बहू से उम्र मे छोटा था तथा दुनिया के छल-कपट को अभी विशेष समझ न पाया था। राजेश को आया जान बहू की बाछें खिल गईं। उसके चेहरे पर छाई मुर्दनी हवा हो गई।

राजेश ने बातों ही बातो मे जिकर किया कि वह अपनी बहन को लिवा ले जाने आया है। इस बात को सुन कर गोपाल तथा अन्नदा दोनों को आश्चर्य हुआ।

अन्नदा ने कहा—"भइया ! अभी कौन सी तीज-गुड़िया है जो तुम

अचानक बहू को लिवा ले जाने आ गए ?"

भोले राजेश को भीतरी बातों का क्या पता । वह उसी सरलता से बोला—"तीज-गुडिया की बात तो नही । जीजी ने ही कहला भेजा था कि उनकी तबियत ठीक नही रहती है । कुछ दिन के लिए लिवा ले चलो । वही सुन कर आया हू । अब जीजी की तबियत कैसी है ?"

राजेश की इस बात को सुन कर अन्नदा हैरान हो गई । आदमी अपने हित के लिए झूठ की किस सीमा तक पहुँच सकता है, इस बात के ध्यान मे आते ही अन्नदा सोच मे पड गई ।

गोपाल राजेश की बातें निर्विकार भाव से सुनता रहा । उसका चेहरा देखने से ऐसा लगता था जैसे वह इस बात को गभीरता मे नही सोच रहा है । अन्नदा या गोपाल ने जब राजेश की बात का उत्तर नही दिया तो उसने फिर पूछा । उसके स्वर मे हड़बड़ाहट थी—

"जीजी की तबियत कैसी है ? आपने बताया नही ।"

अन्नदा कुछ जवाब दे, इसके पहले ही गोपाल बडी गंभीरता से बोला —"घबराने की ऐसी कोई बात नही । अब तबियत कुछ-कुछ ठीक है । तुम कुछ दिन के लिए लिवा ले जाओ तो हवा-पानी बदलने से मन भी बदल जायेगा । मन बदल जाने से तन्दुरुस्ती ठीक हो जायेगी । असल मे बहुत सारी बीमारियाँ तो मन के बिगड़ने से ही हो जाती हैं ।"

राजेश गोपाल की इस बात मे व्यंग का कुछ अनुमान न कर सका । गोपाल की यह बात सुनकर अन्नदा कुछ कुडमुडाई और गोपाल को देख कर केवल इतना ही बोली—"गोपाल !···"

गोपाल तुरन्त बिना किसी झिझक के बोला—"ठीक ही तो कह रहा हूँ माँ ! मेरा मुँह क्या देखती है ?"

"किसी को आनने-पठाने की जिम्मेदारी अब तेरे पर आ गई है क्या, जो ऐसी बातें कर रहा है ?"

"इसमे जिम्मेदारी की क्या बात है ? जो सुनेगा वही यह कहेगा । तुम भी यही कहोगी जो मैं कह रहा हूँ । खैर, आज ही कहाँ बिदा कर रही हो । एकाध दिन तो राजेश रुकेगा ही, तब तक तुम तैयारी कर लो ।" फिर राजेश की ओर मुँह करके बोला—"उठो भाई, नहाओ, खाओ ।

लिवा कर जाना। खाली नही जाने देंगे।" यह कहकर दोनों कुएँ पर नहाने चले गए।

घर में खडी बहू यह सारी बातें सुन रही थी। गोपाल की ऐसी दिलजली बातें सुनकर वह मन ही मन बहुत खीझी। राजेश पर भी गुस्सा आ रहा था कि बिना मुझसे मिले उसे ऐसी बातें कहने की क्या जरूरत थी? अगर अपनी अकल नही थी तो इतना कह देने से भी काम चल जाता कि वैसे ही जानने आया हूँ। वजह बताना कोई जरूरी तो नही था। बेवकूफ जो ठहरा। यह भी घर का पैसा व्यर्थ पढाई पर फूंक रहा है। अकल नाम की चीज इसके दिमाग मे आज तक नहीं आई। इन खीझों के बीच उसे एक प्रसन्नता भी थी कि बिना कुछ विशेष झझट हुए उसे मायके जाने दिया जायेगा।

गोपाल राजेश को लेकर नहाने चला गया। उसके मन मे एक बड़ी उथल-पुथल मची थी। वह सोच रहा था कि उसकी पत्नी का साहस कहाँ तक बढ गया है! छोटी सी बात को लेकर वह कहाँ तक पहुँच गयी! इस तरह छोटी-छोटी बातो पर अगर वह ऐसा रुख अपनायेगी तो घर चलना तो दूर रहा, वही दोनों एक साथ जिन्दगी में कैसे चलेंगे! या फिर माँ-बहन को अलग कर उसी को लेकर रहा जाय तो ही ठीक है। भीतर ही भीतर वह मायके जाने तक को तैयार हो गई और किसी को खबर भी नहीं। किसी को कहकर भेजा होगा! कौन गया होगा उसका सदेशा लेकर? यह सवाल आने पर ही उसके दिमाग मे एक और बात उठी—मेरे घरेलू मामलो में अनजाने ही ऐसा कोई घुस आया है जो भीतर ही भीतर घर घाल रहा है। बहू को गुमराह करने में उसकी भी शह है। बिना मुझे तथा माँ को बताये बहू के कहने से ही उसके मायके चला जाने वाला उसका हितैषी कौन है? ऐसे सवालों से उसके दिमाग में खलबलाहट हुई।

कुएँ से पानी खीचते हुए उसने राजेश से कहा—"राजेश, तुम्हारे यहाँ वह खबर कौन लेकर गया था कि तुम्हारी जीजी बीमार है, कुछ दिन के लिए मायके लिवा ले चलो?"

राजेश ने आश्चर्य से कहा—"तो क्या आपने किसी को नही भेजा था जो मुझसे पूछ रहे है?"

वोट का अधिकार दिया गया है, उसका सदुपयोग जनता जनार्दन अपने ही ढग से करती है।

सरकार न्यायाधीशों की नियुक्ति बडी परख से करती है। न्यायाधीश विचारक, धैर्यवान और निष्पक्ष मनोवृत्ति का होना चाहिए, यह ध्यान मे रखकर न्यायाधीशो की नियुक्ति होती है। पर ग्राम-पचायतों के पचो की नियुक्ति सरकार नही करती, बल्कि उनका चुनाव होता है। गाँव के छोटे-छोटे झगडो का फैसला करने के लिए सरकार ने पचायतो की स्थापना कर जनता जनार्दन को स्वय ही अपना पच चुनने का जो अधिकार दे रक्खा है, उसी का सदुपयोग आज मधुपुर के निवासी कर रहे थे।

ग्राम-पचायत के लिए पच का चुनाव होना था। ब्राह्मणों और ठाकुरो ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये। प्रचार का जोर-शोर भी बढ़ा। अपने-अपने उम्मीदवारों को जिताने के लिए लोगो की बैठके बढ़ने लगी और वे यहाँ तक बढी कि वोट का सवाल जातीय हो गया। ब्राह्मणो और ठाकुरो की दो पार्टियाँ बन गईं। बेचारे हरिजन जो खाई के एक किनारे खडे थे उन्हें यह सूझ ही नही रहा था कि किधर जायें—'भइ गति साँप छछूंदर केरी।' अगर किसी एक की तरफ वे झुकते है तो दूसरी पार्टी उन्हे जीते जी खा जायेगी, यह भय साक्षात खडा था। इनसे भी बुरी दशा थी ब्राह्मनो-ठाकुरों की। जातीय सवाल पैदा हो जाने से वे भी हडबडाये थे कि ऊँट न जाने किस करवट बैठे ? हार-जीत की तो विशेष चिन्ता नही थी। सवाल प्रतिष्ठा का था। हार जाने पर प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी, यही चिन्ता सबसे अधिक सता रही थी। नतीजा यह हुआ कि बिल्ली की भाग छीका टूटा। प्रतिष्ठा बचाने के लिए दोनों पार्टियो ने अपने उम्मीदवार बैठा दिए और खडा कर दिया घिसियावन को।

घिसियावन ने जब सुना कि उसको लोग पंच के लिए खडा कर रहे है तो उसे लगा जैसे इस सारे गाँव मे मैं ही बेवकूफ बनाने को मिला हू। मेरे ढोर कही किसी के खेत के मेड पर पहुँचे नही कि डाट-फटकार और गालियो से मेरी सात पुश्त धोने वाले ये बाह्मन-ठाकुर अब मुझे पच बनायेंगे। मेरे सामने आकर मुझसे झगडों का फैसला मागेंगे। बाप-दादो के जमाने से हम उनके दरवाजे पर जाकर न्याय माँगते थे और अब वे मुझे

सरपंच चुनकर मेरे सामने वादी प्रतिवादी के रूप में बैठ कर मुझसे न्याय माँगेंगे। हे भगवान !"

जब लोगों ने उससे फार्म भरने को कहा तो वह बड़े जोर से हँसा, बोला—"भाइयों, इतने बड़े गाँव में मैं ही चौधरी रहा। अभी तो आप सब के खेत-बारी, बाग-बगीचा में गुजर करके दो रोटी मिल जाती है, अब इससे भी छुड़ाना चाहो तो जहाँ चाहे टिपवा लो।"

गाँव के नम्बरदार ने डाटा—"पागल हुए हो। देखते नहीं, इस गाँव के ब्राह्मण-ठाकुर सब मिलकर तुम्हें खड़ा कर रहे हैं। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। हरिजनों के वोट तुम्हें मिलेंगे ही। फिर डर काहे का।"

घिसियावन फिर गिड़गिड़ाया—"नम्बरदार ! यह तो सब ठीक है। मगर यह भी तो सोचो कि मुझ जैसा आदमी, जिसने अदालत का दरवाजा तक नहीं देखा, वह पंच होकर क्या करेगा ? वहाँ तो ऐसा आदमी चुन कर भेजो जो सब तरह मातवर हो, पढ़ा-लिखा हो। मुझ जैसा गँवार वहाँ जाकर कौन सा कानून पढ़कर फैसला करेगा ?"

इस बार पण्डित रामजियावन बोले—"घिसियावन ! मन्दिर का देवता जो है सो कुछ नहीं करता। वह तो मन्दिर में जो है सो केवल नाम के लिए होता है। उसी के नाम पर पुजारी आशीर्वाद देता है, चढ़ावा लेता प्रसाद देता है, इसलिए तुम क्यों चिन्ता करते हो ? यही भक्त लोग सब करेंगे। तुम फार्म पर दस्तखत कर दो, बस।"

घिसियावन ने बहुत हीला-हवाला किया, पर जब देखा कि लोग नहीं मान रहे हैं तो उसने उम्मीदवार के फार्म पर दस्तखत कर दिया। जमानत की रकम पण्डित रामजियावन ने जमा कर दिया।

घिसियावन निर्विरोध पंच ही नहीं चुना गया, बल्कि पंचायत अदालत में वही सरपंच भी हुआ। क्योंकि वहाँ भी ब्राह्मण-ठाकुर का जातीय सवाल उठ गया और इसका पूरा लाभ मिला घिसियावन को।

वह बड़ा घबराया। यह सब कैसे हो गया ? उसे इस जीवन में वैसा होने की कहा कल्पना थी ? सवाल ही नहीं पैदा होता था कि उस जैसा निरीह और उपेक्षित व्यक्ति एक दिन अनचाहे, अनजाने पंचायत अदालत का सरपंच हो जायेगा ? वह क्या करेगा, कैसे करेगा ! इसी उलझन में खो

गया। बात परेशानी की भी थी।

घिसियावन के सरपच चुने जाने पर मधुपुर के निवासी तो जैसे आसमान मे उड चले। जन-बच्चा खुशी में डूब गया। परेशान था तो एक घिसियावन। जो स्वय सारे गाव की खुशी का कारण था वही कहीं एक अज्ञात भय से दुखी था।

घिसियावन को परेशान देखकर एक दिन बिहारी ने कहा—"घिसियावन क्या बात है ? बडे खोये-खोये से नजर आ रहे हो।"

उसकी परेशानी को समझकर कोई सहानुभूति प्रकट करने वाला मिला, यह देखकर उसकी निगूढ वेदना फूट पडी—"परेशानी की बात क्या बताये भइया ! देखो न, गाव के सब लोगों ने मिलकर मुझे कैसे जाल में फँसा दिया। जिसने अब तक जिन्दगी मे अदालत का कभी मुँह नहीं देखा, वहा कैसे खडा हुआ जाता है, कैसे बोला जाता है, कैसे बयान होता है, कैसे बहस होती है, कैसे सबूत पडते है ? यह सब कुछ नही कभी देखा जाना नही। वही मै अब पचायत अदालत का सरपच होकर सब देखूगा, सब करूगा। तुम्ही बताओ मै क्या करूँगा ? लेना एक न देना दो, जहमत दुनिया भर की। लोगों ने तो मुझे मार-मार कर हकीम बना दिया।"

बिहारी उस की 'मार-मार कर हकीम' वाली बात पर बडे जोर से हँसा।

घिसियावन अवाक् चौकन्ना हुआ और फिर आश्चर्य से बोला—"हँसे क्यो भइया ?"

बिहारी हँसी के स्वर मे बोला—"यही तुम्हारी 'मार-मार हकीम' वाली बात पर। तुम्हें तो सचमुच मार-मार कर हकीम बनाया गया, लेकिन यह भी जान लो कि ऐसा हकीम एक दिन सचमुच बड़ा हकीम हो जाता है। लोग उसकी हिकमत का लोहा मानने लगते है।"

कहते-कहते बिहारी की आवाज तथा चेहरे पर गभीरता छा गई।

घिसियावन की उत्सुकता बढ चली, बोला—"सो कैसे ?"

बिहारी इस कहावत की कहानी समझाना चाहता था, बोला— एक बादशाह को अपने दरबार में एक हकीम की जरूरत थी, पर राज्य ऐसा कि उसमें कोई हकीम ही न था, अतः मुसाहिबों को जब राज्य भर में कहीं

हकीम नही मिला तो वे घबराये। इसी चिन्ता मे उन्हे एक उपाय सूझा। उन लोगो ने तुम जैसे एक गडरिये को रास्ते पर पकड़ लिया और कहा कि तुम हकीम हो। बेचारे गडरिया का डर के मारे होश गुम। उसने एक बार सबके चेहरे को देखा तो काप गया। क्योंकि जान गया कि ये बादशाह के आदमी है। चारा काटने के अपने लम्बे से कटासे की ओर इशारा करके बोला—"हुजूर, मैं गडरिया हू।"

उसका इतना कहना था कि एक सिपाही ने पीठ पर धौल जमाते हुए कहा—"अबे साले तू गडरिया नहीं, हकीम है।"

मार खाकर गडरिये ने दूसरे सिपाही की ओर देखा और दर्द-भरी आवाज मे बोला—"नही मालिक, आपको गलती लगी है। मैं गडरिया हू। मेरे बाप-दादे गडरिया थे। यह रहा मेरा कटासा और वे चर रही मेरी भेड-बकरिया"—कहकर वह उन सिपाहियों का मुंह देखने लगा कि अब भी समझ कर रहम करें।"

लेकिन रहम के बदले हुआ यह कि सब चिल्लाये—"मारो साले को। कहता है गडरिया हू। जब हम कह रहे है कि तू हकीम है तो जबान लडता है। दो-चार लगने दो, अभी अपने आप ठीक हो जायेगा।" यह कहकर सबने मिलकर उसे पीटना शुरू किया।

बेचारे गडरिये ने जब देखा कि जान पर आ गई तो चिल्लाया—"हुजूर मैं हकीम। मैं हकीम···अब बस करो। मैं ही नही मेरे बाप-दादे हकीम···मेरी सात पुश्त हकीम!"

सिपाही हँसे—"देखा, अब आया सही रास्ते पर। कहने लगा न, कि हकीम हू।" और वे उसे दरबार मे हकीम बनाकर ले गये।

"हा, तो वह गडरिया दरबार मे पहुँचकर सबसे बड़ा हकीम बन गया। उसकी हिकमत मे कितनी उसकी अकल होती थी कितनी दूसरो की, यह तो नही मालूम, पर हकीम वह माना हुआ था।"

चूंकि यह बात बिहारी ने कहानी के जरिये समझाई थी, इसलिए घिसियावन के दिमाग मे उतरी। वह बड़े शान्त भाव से सुन रहा था। बिहारी को भी जोश आ गया था, वह कहता गया—

"हां, तो तुम्हें इतना परेशान होने की जरूरत नही। जिन लोगों ने

तुम्हें खड़ा किया, जिताया, वे लोग क्या यह नहीं समझते कि तुम क्या करोगे ? कैसे उन्ही लोगों के झगडों का फैसला करोगे ? बीतने तो दो दस दिन। वे ही सब लोग तुम्हारे पीछे टहलुआ बने घूमते रहेंगे। जिस बात से तुम घबरा रहे हो, वह बेकार है। चार दिन पचायत अदालत में बैठे नही कि सब सीख लोगे। दूसरो को सिखाने लगोगे। तुम एक छोटी सी ग्राम-पचायत से घबरा रहे हो, उन लोगों को देखो जो विधान सभाओं में जाकर सारे देश का शासन चलाते हैं। उन सबके पास विशेष योग्यता की कोई डिग्री नही होती। किसी काम को करना खुद अपने में बहुत बडा अनुभव है। यह सब तुक-ताल की बाते है। जन-तन्त्रात्मक शासन मे यह कोई असम्भव बात नही। जनता जिसे चुन ले वही समर्थ। तुम्हें भी तो जनता ने चुना है, इसलिए इस गाव मे अब तुम्हीं सबसे मातबर, योग्य तथा भले आदमी हो। चूंकि ऐसा सब मानते हैं, इसलिए तुम्हे भी अपने को ऐसा ही मानना चाहिये।

"तुम मुझे ही देखो। इस उमर तक पढा, उमर गँवाई, घर का पैसा फूंका और अब बेकार घूम रहा हूँ। लम्बे-लम्बे सार्टिफिकेट धरे है। तुम बिना किसी सार्टिफिकेट के जज बन गए। तुम्हें सबसे बडा सार्टिफिकेट दिया जनता ने। न तुम्हारा कहीं इम्तहान हुआ, न तुमसे किसी ने सार्टि-फिकेट माँगा और न ही धीरे-धीरे सीढियाँ चढ़ कर यहाँ तक पहुचे। कल, तक अरे ओ घिसुआ ! कहकर पुकारे जाते थे। अब देखना, लोग कैसी तुम्हारी इज्जत करते है।"

"अभी एक महीना पहले मैं अपनी लियाकत का दुनिया भर का सार्टिफिकेट बटोर कर जब कोआपरेटिव बैंक मे क्लर्की के लिए इन्टरव्यू देने गया तो इन्टरव्यू लेने वालों ने जानते हो क्या पूछा ? कहने लगे—जिस इक्के मे वैठकर आए हो उसका नम्बर क्या था ? जापान के बादशाह का नाम क्या है। बरतानिया का प्रधान मन्त्री कौन है ? उन विद्वानों से कौन कहता है कि भले आदमियों, कोआपरेटिव बैंक की क्लर्की के लिए आए उम्मीदवार से कुछ हिसाब-किताब की बात पूछते। इन बेतुके सवालो से क्या मतलब ? नतीजा यह कि मैं नाकामयाब रहा।

"अभी तुम्हें बडा अटपटा लग रहा है। धीरे-धीरे तुम दुनिया को भूल-

भाल कर उसी के हो जाओगे।"—बिहारी की बातें सुन कर घिसियावन के मन को कुछ तसल्ली मिली। मन में जम जाय तो फिर कोई काम कठिन और असाध्य नही लगता।

शुरू-शुरू मे घिसियावन दूसरे लोगो के हाथों की कठपुतली बना रहा। उसे बाहिरी लोग जैसे चलाते वह उन्ही के इशारे पर वैसा करता। धीरे-धीरे उसे यह समझ आने लगी कि उसे क्यों लोगों ने मिलकर जबरदस्ती पच के लिए खड़ा किया था। लोगो ने मेरी नासमझी का इसी तरह फायदा उठाने के लिए मुझे जोर देकर सरपच बनाया।

रोगी ही वैद्य होता है। धीरे-धीरे घिसियावन अपने अज्ञानता के रोग पर काबू पा गया। उसकी ओर से दलाल लोग जो-जो करतूतें करते थे, वह सीख गया। पद का मद बुरा होता है। उसे जमाने की हवा लगी और बिहारी के कहे अनुसार वह सचमुच बडा हकीम बन गया। उसकी हिकमत परोक्ष रूप से अपना रग दिखाने लगी।

पहले वह घिसुआ से घिसियावन कहलाया और जब प्रतिभा थोडी और चमकी तो उसका नाम ही 'सरपच' हो गया।

शुरू-शुरू मे केस का फैसला करने के पहले वह पण्डित रामजियावन की सलाह अवश्य लेता, लेकिन अब स्थिति दूसरी थी। अब सलाह स्वय न लेकर अनुकूल वादी-प्रतिवादी को समझाने के लिए पण्डित रामजियावन के पास भेज देता था। पण्डित जी अब मुँह से ज्यादा इशारों से बात करते थे। वे 'जो है सो' कहकर ऐसा समझा देते थे कि काम बन ही जाता।

पण्डित रामजियावन अब पुरोहित से ज्यादा दलाल हो गये। लेन-देन का सारा काम इन्ही के माध्यम से होता था और घिसियावन दूध का धोया बना हर तरफ 'सरपच' कह कर पूजा जा रहा था।

सरकार ने लोक-हित की दृष्टि से पचायतों का जाल बिछा दिया। पर लोगो ने उसे जजाल बना दिया। पहले तो गाँव के दो-चार घर ही मुकदमे मे फँसे रहते थे, अब गाँव का हर घर मुकदमेबाज हो गया है। तनिक सी बात हुई नही कि पहुँच गए पचायत मे दावा करने। न वकील का झझट, न कोई फीस का चक्कर और न कही आने-जाने की परेशानी। किसी के खेत मे किसी का ढोर पड जाने पर पहले लोग उलाहना देते थे

अब सीधे पचायत अदालत मे दावा ठोक देते है। किसी ने अपने हलवाहे को काम के लिए डाँटा नही कि दूसरे दिन वह पचायत अदालत के सामने आ गया। अपने मे बडों की मान-मर्यादा, आदर-भाव सब समानाधिकार की आग मे स्वाहा हो गया। जितने मुकदमे इन पचायत अदालतों मे होते है, उतने शायद ही सदर अदालतों मे होते हों।

घिमियावन को पहले अपने घर-गृहस्थी और खेती-वारी की फिकर रहती थी। जब कही बैठता तो किसानी-गृहस्थी के छोटे से दायरे के सिवा और कोई चर्चा ही उसे न सूझती थी, पर अब तो वह उन सब बातों को भूल गया। अब उसकी चर्चा का विषय मुकदमा, सम्मन, पेशी, सबूत ही रह गया। आदमी का दायरा ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह उसमें उलझता जाता है। शान्ति और सन्तोष तो उसे किसी सीमा पर मिलता ही नहीं। जिसे सुख मान कर वह पाने के लिए दौडता है वह मिल जाने पर *उसकी तृष्णा आगे बढ़ जाती है। उसे ऐसा लगता है जैसे उसका प्राप्य* सुख अभी उससे कोसों दूर है।

घिमियावन की गति यही हो गई। एक दिन जिस पद को अनायास पाकर वह घबराया था, परेशान हुआ था वही पद उसे आज भी परेशान किए है, पर इस परेशानी का रूप दूसरा है। अब उसे फुरसत ही नही रहती कि कही दो घडी आराम से बैठ ले। जिधर से वह निकलता उधर से आवाजे आतीं—'आओ सरपच, क्या हाल है ? कहाँ घूम रहे हो ?'—कल तक उसे अपने सामने खाट पर बैठा रहते देखकर आग-बबूला होने वाले, आज यह कह कर खुद पैताने की ओर सरक कर उसे सिराहने की ओर बैठने की जगह दे रहे है। सम्मान आदमी का नहीं, उसकी स्थिति विशेष का होता है। घिमियावन अपने को दिये गये इस सम्मान को कोई *विशेष महत्व नही देता।—'बहुत जरूरी काम से जा रहा हूँ।'*—कह कर वह चल देता। यह हाल था उसका।

उधर पण्डित रामजियावन का रग और ही था। यद्यपि प्रत्यक्ष वे *कुछ भी नहीं थे, पर परोक्ष रूप मे जो थे, उसी के बल पर* उन्होंने उपरेहिती छोड दी। एक दिन था कि वे पूछ-पूछ कर सत्यनारायण की कथा कहते थे। जजमानों को कथा सुनने के लिए उत्साहित किया करते थे।

भगवान पर चढावे की चवन्नी के लिये दो-घण्टे मुह फाड कर चिल्लाते थे। जेठ की तपती दोपहरी में गोदान के लिए एक मरतग बछिया का पगहा पकडे दर-दर मारे-मारे फिरते थे। पाँच-पाँच आने गोदान के लिये खडी दोपहरी मे वे उन गाँवो मे भी जाने से न हिचकते थे जहाँ हैजे आदि बीमारियो के कारण कितने घरो मे ताले झूल गये। चुटकी भर सीधा के लिए जजमान की जय-जयकार करते नही थकते थे।

पर अब ?—अब तो हवा ही दूसरी थी, रग ही और था। जैसे पहिले जमीदारों के कारिन्दा लगान वसूल करने के लिए निकल कर घूम-घूम कर खाते थे, बस वैसे ही पण्डित रामजियावन अपने आप ही सरपच का कारिन्दा बने जहाँ देखो वही खा कर डकरा रहे है। जिसका केस अँटका देखते उसके परम हितैषी बन कर अन्दर ही अन्दर छानते। लोग यही समझते कि पण्डित जी और सरपच एक ही है।

एक दिन इन्ही पण्डित रामजियावन ने अन्नदा के खेत के मामले मे घिमियावन को लाठी चमकाई थी। उसका घर फूंकने और टाँग तोडने की धमकी दी थी। गाली से उसके दो पुश्त तक की खबर ली थी।—आज वही रामजियावन घिसियावन के दाहिने हाथ बन कर काम कर रहे थे। मौके से लाभ उठाने वाला समझदार आदमी माना जाता है।

अपने साले राजेश से यह मालूम होने पर कि पलटू उसके यहाँ मेरी पत्नी का सदेश लेकर गया था कि मेरी तबियत ठीक नही रहती, अत. मुझे कुछ दिन के लिए लिवा चलो, गोपाल को पलटू पर बड़ा क्रोध आया। उसने सोचा, जो जिन्दगी में बुलाने पर भी कभी काम नही आया, वह मेरी घर की बातो को दूर-दूर तक पहुँचाने मे अपना काम छोड कर दौड़ा जाता है। ऐसे कामो के लिए घरफोड़ू लोग अपने कामो का हर्ज करके भी काम करने को तैयार रहते है।

एक दिन पलटू गोपाल के सामने पड़ ही गया। गोपाल ने आवाज दे

कर उसे बुलाया। चूँकि पलटू पण्डित रामजियावन का हलवाहा था, और रामजियावन का आजकल रंग था। पुरोहिती की पवित्रता व सौम्यता को तिलांजलि देकर आजकल वह कुटिल राजनीति का खेल रहे थे, इसलिये अब उनका दिमाग सातवें आसमान से कम ऊँचे नहीं था। एक दो बार तो उसने ऐसा किया जैसे सुन ही नहीं रहा है। उसकी इस हरकत पर गोपाल का गुस्सा भी बढता जा रहा था। वह स्वय उठा और चल कर पलटू का हाथ पकड कर झकझोरता हुआ बोला—"क्यों रे, बहरा भी हो गया ?"

पलटू ने गोपाल की लाल-लाल आँखें जो देखी तो सहम गया कि गोपाल का गुस्सा इस वक्त कितना तेज है। और मौका होता तो शायद वह ऊट-पटाँग जवाब भी देता, पर इस वक्त वह समझ गया कि तनिक भी चीं-चपड की तो गोपाल का भरपूर हाथ पडे बिना न रहेगा। फिर मार पडे गुहार किस काम की। काँप कर हकलाया—"ह···अ···हम सुना ही नहीं भइया।"

गोपाल उसी स्वर मे बोला—"सुनेगा क्यो ? चाचा की हवा में तू अन्धा तो हो ही गया था, अब बहरा भी हो गया है।"

"न···न···न···नाही महाराज। भ···भ···भगवान कसम, हम सुनवै नाही भये। क···क···का···हुकुम अहै।"—पलटू के स्वर मे भय के साथ गिडगिडाहट भी थी।

गोपाल ने उसका हाथ छोड दिया, पर डपट कर पूछा—"किसने तुझे मेरी सुसराल भेजा था ?"

पलटू हडबडाया—"के···के···के·· केहू नाही भइया।"

पलटू के इस साफ झूठ पर गोपाल को क्रोध बहुत आया। ऐसे मौको पर वह उठे हुए हाथ गिरा ले और गुस्सा पी जाय, ऐसी आदत उसे नहीं थी, पर न जाने क्यों आज वह अपना क्रोध पी गया। पर दूसरे ही अन्दाज में बोला—"तो फिर मै ही बताऊँ कि किस ने भेजा था ?"

पलटू गोपाल के इस उलटे क्रोध को ताड गया। डर के मारे सब उगल दिया—"ह·· ह···हम का तो भइया पण्डिताइन पठइन है कि गोपाल का दुलहिन दिक अहै, तवन ओकरे भइया का बोलाय लियावा।

गोपाल गर्जा—"पण्डिताइन के बच्चे ! पण्डिताइन अगर कह दें कि कि कूयें मे कूद पडो, तो क्य कूद पडेगा ? इसे छोड, यह तो तेरे मरने की बात होगी । लेकिन अगर वह कहे कि तू मेरे घर मे आग लगा दे या सोते समय मेरा सिर काट ले, तो क्या तू आग लगा देगा, या मेरा सिर काट लेगा ?"

गोपाल के इस सवाल का जवाब न देने से काम नही चलेगा, यह सोच कर पलटू ने दोनो हाथ जोड दिये और बड़े दयनीय स्वर मे बोला—"दो···दो···दोहाई भगवान की । ए···ए···एस काम मालिक कबहू न करावे ।"—कह कर उसने अपने दोनों कानो को हाथ लगाया । तथा गोपाल का अब क्या रुख है, देखने लगा ।

गोपाल कुछ नरम हुआ । बोला—"तुझे पण्डिताइन जब ऐसा संदेशा देकर भेज रही तो तुझे चाहिए था कि मुझ से भी तो पूछता । मेरे घर की बात और बिना मुझसे पूछे तू चला गया । तुझे पता है कि चाचा और चाची मुझसे खार खाये बैठे हैं । हमारे घर मे जो भी बुराई न करा दे थोडा है । वे तो ऐसा मौका देखती है । तू भी उन्ही का अब साझीदार हो गया है ?" कह कह जवाब की प्रतीक्षा करने लगा ।

पलटू ने गोपाल की ऐसी बातें सुनी तो उसे कुछ राहत मिली । भय के बादल छँट गये थे । अफसोस जाहिर करता हुआ बोला—"ब···ब··· बडी गलती भइ भइया । ह···ह हमरिउ मति बउराइ गई ।"

"तो जा, इस बार छोड़ दिया । आगे से ऐसी हरकत की ससुरे तो हड्डी-पसली एक कर दूंगा । समझ रहा है न ?"—कह कर गोपाल चलने को हुआ ।

पलटू ने समझा, जान बची लाखों पाये । गोपाल ने 'समझ रहा है न ?' कह कर जो इशारा किया था, उनका जवाब देना जरूरी था । थोड़ा पीछे हटता हुआ बोला—"स···म ··सब समझता अही ।"

गोपाल पलटू को यह सिखावन और समझावन देकर चला गया । गोपाल के ओझल होते ही पलटू के मन ने पलटा खाया । सामने आये हुए भय के समाप्त हो जाने पर आदमी फिर शेर हो जाता है । उसके स्वर की सारी गिडगिडाहट, चेहरे की सारी दयनीयता लोप होकर एक बार

फिर साहस मे बदल जाती है। पलटू की भी यही स्थिति हुई। गोपाल का साक्षात भय समाप्त होने पर वह एक कुटिल हँसी-हँसा और स्वत. ही धीरे-धीरे पुटपुटाया—'व' 'व' 'वडा तीसमार खाँ वनि के आय रहेन। जइसे यनही क धाका वाज अहै। ह' 'ह 'हम हू केहू रॉड-दुखाही क मनई-मजूर न अही। आजै तो कहव पण्डित से।" इस तरह वडवडाता हुआ वह चला गया औरसाँझ के झुट-पुटे मे पण्डित रामजियावन के यहाँ जा पहुँचा।

दोपहर को गोपाल से जो सारी वातें हुई थी वह सब उसने पण्डित जी को सुना ही नही दिया, वल्कि गोपाल के गुस्से की नकल करके दिखा भी दिया।

पडित रामजियावन सब देख-सुनकर कुछ देर तक सोचते रहे और फिर बडे जोर से हँसकर वोले—"पलटू! तू जा अभी घर। इसका इन्तजाम जो है सो मैं करूँगा। तुझे डरने की कोई वात नही। पंछी जो है सो जाल मे आ गया है।"

पलटू चला गया। पडित रामजियावन आगे कुछ न वोले। उनके आदमी को कोई कभी कुछ कह देता और उन्हे पता लगता तो उसका घर घेर लेते, मगर गोपाल की वात सुनकर अनजान वने रहे, जैसे उन्हे कुछ पता नही।

दुश्मन जब मात खाकर निर्विकार भाव से सन्नाटा खीच ले तो समझ लेना चाहिए कि कोई छिपी घात करेगा।

वह नाराज होकर भाई के साथ चली गई और गोपाल के लिए जैसे कुछ हुआ ही नही, अनन्दा यह काफी दिनों से देख रही थी। वह लाख वुरी थी, लेकिन थी तो वह अपनी बहू ही। उसका विछोह होते ही अनन्दा को उसका अभाव खला। सारा घर सूना-सूना सा लगता। कही वाहर से जब वह घर मे आती तो उसे वह दिन याद हो जाते, जब वह विल्कुल अकेली थी, सारा भार उसी के मत्थे था। जो काम जहाँ छोड देती, उसे

वहीं से फिर उठाना पड़ता। तब विवशता थी, किसी का आसरा नहीं था। लेकिन अब—अब उन दिनों की याद ही उसे काटने-सी लगी। वह चाहती थी कि अब जब वह बाहर से आए तो घर उसे भरा हुआ मिले। बहू घर के कामों में लगी रहे, आगन में मुन्ना खेलता रहे, वह ललक कर उसे उठा ले, चूम, ले, प्यार करे।

ऐसा था भी उसका घर। उस भरे पूरे घर के कभी-कभी बहू से कुछ बात हो जाती थी तो उसका मतलब यह नहीं, कि वह उसके लिए पराई हो गई। उसकी ममता उसमें नहीं रह गई। जहाँ चार बर्तन रहते हैं, वहाँ कोई न कोई खनक ही उठता है।

मुन्ने की सूनी खाट देखती, बिना बहू का घर देखती तो उसका मन बेचैन हो उठता। भगवान की दया से सब कुछ भरा है। बेटा, बेटी, बहू, पोता सबसे भरा यह घर इस प्रकार सुनसान रहे इसमें सन्नाटा रहे—यह अन्नदा से न सहा गया।

एक दिन गोपाल से कहा—"गोपाल, तू तो जैसे आँख पर पट्टी बाँध बैठा है। पता है कि वह नाराज होकर मायके चली गई है, पर तुझे जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। कभी उधर झांक कर देखा तक नहीं। मुन्ने की भी याद तुझे जैसे नहीं आती। वे लोग अपने मन में क्या सोचते होंगे, कि यह बीमारी की बात कह कर आई, पर है तो हट्टी-कट्टी। कैसी बीमारी है इसे। इसे छोड़, उनके सोचने की बात गई भाड में तू खुद ही सोच—बहू अपने मन में क्या सोचती होगी? झगड़े किस के घर में नहीं होते? दोनों इस तरह मान करके बैठ जायें तो घर कैसे चले? कल जाकर बहू को लिवा ला।"

गोपाल बोला—"माँ, झगड़ा ही क्या हुआ था जिसके लिए वह अपनी मरजी से भाई को बुलवाकर चली गई? मैं उसे लिवा ले आने हरगिज नहीं जाऊँगा। इससे उसका दिमाग और चढ जायेगा। अपनी मरजी से गई है तो अपनी मरजी से आने भी दो। देखता हूँ कब तक वहाँ रहती है?"

"बस बेटा, यहीं गलती करते हो। उसकी जिद्द और नासमझी को लेकर तुम किसका नुकसान करोगे? तुम जो समझते हो कि उसका नुकसान होगा, अधिक दिन मायके में रहने से उसका मान घटेगा

यह तुम्हारी भूल है। उसका नुकसान और अपमान तुम्हारा नुकसान और अपमान है, इस घर का नुकसान और अपमान है। वह नाराज होकर गई है तुम मान देकर ले आओ। अपने को मान देकर अपनाना चाहिए न कि और अपमानित कर दूर करना।"

गोपाल की इच्छा नहीं थी कि ससुराल जाकर बहू को लिवा आए। —बहू का दिमाग इतना चढ गया कि तनिक सी बात पर बोलना बद कर दिया। अपनी मरजी से मायके चली गई। जाते वक्त भी नहीं बोली, जैसे मैं उसका जन्म का वैरी हूँ—इन सब बातों को सोचकर बहू की ओर से उसका ध्यान ही उठ गया। उसे वापस लिवा लाने के लिए उसके मन मे कभी कुछ हुआ ही नही। पर आज माँ की जिद्द के आगे उसकी एक न चली। इच्छा न होते हुए भी उसे जाना पडा।

गोपाल के ससुराल पहुँचते ही सब बडे खुश हुए। राजेश ने तो देखते ही चुटकी ली—"आप भी तो कह रहे थे कि जीजी बीमार है, पर वह तो बिल्कुल बीमार नही थी। यहाँ तो एक दिन भी दवा नही करनी पडी।"

गोपाल हँसकर बोला—"राजेश, कुछ बीमारियाँ तन की होती हैं और कुछ मन की। तन की बीमारियो के लिए बाहरी दवाओ की जरूरत पडती है। मन का रोग तो मन की ही दवा मे अच्छा होता है। तुम्हारी जीजी को मन की बीमारी थी।"

राजेश ने फिर कुछ न कहा। जैसे इस रहस्य को समझ ही न पाया।

बहू एकान्त पाकर जब गोपाल से मिली तो बोली—"आ गए! इतने दिनो बाद मेरी सुधि आई? आती भी क्यों, अम्मा जो थी देखभाल को। मैंने भी तय किया था कि इस बार मैं भी जम कर रहूँगी, देखती हूँ कोई कब तक नही आता लिवा ले चलने।"

बहू की ये बातें गोपाल को व्यग-सी लगीं। इतने दिनो बाद मिली तो भी प्रेम मे नही बोलने की, वही जहर भरी बाते। माँ की, मंदा की घर-गाँव की हालचाल तो नही पूछने की, अपनी ही ठसक से बोल रही है। कुछ देर बाद बडी गम्भीरता से बोला—

"पर तुमने यह कैसे सोचा लिया कि मैं तुम्हे लिवा ले जाने आया हूँ? मैं तो मुन्ना को देखने आ गया। इतने दिन हो गए, न देखा न हाल मिलो

इसलिए चला आया ।"

गम्भीरता से कही गई पति की यह बात सुनकर बहू के हाथ से जैसे तोते उड गए । होठों पर हाथ रखकर आश्चर्य से बोली—"हाय राम ! तो क्या आप मुझे लिवा ले चलने नहीं आए हो ?"

"बिल्कुल नहीं । क्या तुम मुझसे पूछकर यहाँ आई थी ?"

"नहीं ।"

"तो फिर जैसे अपनी मरजी से आई हो वैसे ही जब मन भर जाता तब भाई को साथ लेकर चली आना लेकिन अब अगर तुम्हारा मन भर गया हो और यह लगे कि अब ज्यादा रहना ठीक नहीं और तुम चलने को जिद् ही करोगी तो फिर लिवा भी चलना पडेगा ।"

बहू के मन को लगा जैसे मान की टूटती डोर बच गई । उखडते चेहरे पर आशा की किरण छिटकी, हँस कर बोली—"अच्छा, सच्ची बात छिपा-कर मेरे को बहका रहे हो । वैसे रहने को कोई मनाही नहीं । यहीं कभी-कभी भौजाईयों का मुंह टेढा देखती हूँ, तो सोचती हूँ, क्या मैं बेघर बार की हूँ या बेमहारा हूँ जो यहां पडी-पडी इन सबके नखरे सहती रहूँ ।"

गोपाल ने ताना मारा—"क्यों नखरे किसके ! इन्हीं सबका गुमान लेकर तो अपने पैरों चलकर यहां आई थी ।"

बहू को पति की बात लगी । जब कुछ और न सूझ पड़ा तो खीझ कर बोली—"तुम्हे ताना मारने को तो हो ही गया ।" यह कहती हुई वह भीतर चली गई ।

गोपाल को लगा कि उसका गलत ख्याल था । जिस बात को सोच कर वह यहाँ नहीं आना चाहता था वह बात गलत थी । बहू को सचमुच लिवा ले चलने की जरूरत है । बाहर में वह चाहे जो कहे, मगर यहाँ रहने में अब उसे कितना कष्ट है, यह वह अपने स्वाभव के तीखेपन के कारण कह नहीं सकती । उसने बहू को लिवा ले चलने का पक्का निश्चय कर लिया ।

माले-मलहजियों ने शिष्टाचार दिखाते हुए कहा भी कि अभी ननद जी को कुछ दिन और रहने दो, मगर उनके मन की असली बात गोपाल तथा बहू से छिपी तो थी नहीं ।

गोपाल ने सहज ही कहा—"इस बार नहीं। फिर कभी लिवा लाना तो चाहे जब तक रखना।"

उन लोगों ने फिर जोर नहीं दिया। गोपाल तीसरे दिन वहू को अपने घर लिवा ले आया।

अन्नदा ने वहू को देखते ही लपक कर छाती से लगा लिया। मुन्ना को गोद मे लेकर उसका मुँह प्यार से भर दिया। जैसे उसकी खोई हुई थैली मिल गई हो। इन दो प्राणियो के आने से सारा घर भरा-सा लगने लगा। घर का सारा सूनापन मुन्ने की किलकारियों में समा गया। वहू के पायल की झकार फिर से घर मे मधुर सगीत-सी गूँजी।

आदमी को अक्सर जिन्दगी मे परिस्थितियों से समझौता करना पडता है। ऐसा न करने पर वह व्यक्ति साधारण न रहकर असाधारण हो जाता है। उसकी यह असाधारणता भले-बुरे दोनो चीजों मे से किसी एक मार्ग पर विकसित होती है। आदमी सहज ही प्रतिकूल परिस्थितियो से समझौता नही करना चाहता, पर कभी-कभी कुछ ऐसी मजबूरियाँ आती है जो मन की सारी उमगों को मार कर रख देती है।

एक दिन गोपाल दोपहर के वक्त दालान मे लेटा आराम कर रहा था कि विहारी आया और कुछ इधर-उधर की बात कर थोडा आश्चर्य भरे स्वर मे बोला—"कुछ तुमने भी सुना गोपाल ?"

गोपाल बिहारी को अपना बडा भाई जैसा मानता था। बिहारी के आने पर वह उठकर बैठ गया और बिहारी को सिरहाने बैठने की जगह करते आश्चर्य का भाव चेहरे पर ला कर बोला—"क्या कोई नई बात ?"

बिहारी ने इधर-उधर देखा कि कही कोई और तो नहीं जो उसकी बात सुन सके। किसी को न देख निश्चिन्त होकर बोला—"हाँ नई भी और खास भी। मुझे किसी खास आदमी से मालूम हुआ है कि पलटू ने तुम पर पचायत अदालत मे दावा कर दिया है।"

गोपाल ने आश्चर्य से कहा—"पलटू ने मुझ पर दावा कर दिया है ? पर क्यों ?"

"तुमने किसी दिन उसे पकड कर डाटा फटकारा होगा, उसने इसी बात पर तुम्हारे ऊपर दावा कर दिया है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह जाल चाचा रामजियावन का फैलाया हुआ है, वर्ना पलटू की क्या मजाल कि केवल डाटने पर पचायत अदालत तक पहुँच जाता।"—बिहारी ने कारण की भी व्याख्या कर दी।

गोपाल के आश्चर्य की मुद्रा अब सोच मे बदल गई। वह गहरे विचार मे पड़ गया—बिना बात के भी जब लोग इस प्रकार पचायत अदालतो मे पहुँचने लगेंगे तो फिर पचायत झगड़ा निबटाने वाली संस्था न रह कर लड़ाई का अखाड़ा बन जायेगी। एक झगड़ा दूसरे झगड़े को जन्म देगा। फल यह होगा कि प्रेम के लिए बनाई गई यह सस्था कलह का कारण हो जायेगी।

गोपाल को बिलकुल चुप हुआ देखकर बिहारी ने पूछा—"कैसे गहरे सोच मे पड गए ?"

गोपाल एक लम्बी साँस लेकर बोला—"सोच किस बात का बड़े भइया ! पलटू ने जब दावा कर दिया तो पचायत का फैसला सिर माथे लूँगा। तुम्ही सोचो, पलटू को इस तरह मैं मारने को ही घेरता तो क्या केवल घेर कर छोड देता। उसे पीटने का ही मेरा इरादा होता तो इस गाँव में मेरे हाथो से उसे बचाने वाला कोई नजर नही आ रहा है। यह तो छीकते नाक काटने वाली बात है। पलटू केवल डाटने से ही मेरे खिलाफ कानून की किताबों मे दफा खोजने लगेगा, इसका मुझे यकीन नही था, लेकिन उसे भी अधिक दोष क्या दूँ ? असल बात तो यह है कि चाचा ही मुझसे खार खाए बैठे है। न जाने कितनी पुश्त तक वे अपनी दुश्मनी ले जायेंगे। पलटू तो एक बहाना मिला है। सच तो यह है कि वे मुझे नीचा दिखाना चाहते है।"

बिहारी ने साहस देते हुए कहा—"नीचा दिखाना इतना आसान नही है गोपाल ! केस चलने दो, सबूतों मे निबट लेंगे।" देखता हूँ कितना दम दम है इस केस मे"—कह कर बिहारी चला गया।

जब सम्मन आया तो गोपाल ने चुपचाप सम्मन ले लिया। अन्नदा ने पूछा—"कैसा सम्मन है गोपाल ?"

गोपाल ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया, जैसे यह कोई बड़ी बात ही न हो—"पलटू ने पचायत मे दावा कर दिया है।"

अन्नदा का मुंह आश्चर्य से फैल गया, बोली—"पलटू ने दावा कर दिया है ?···पर क्यों ?"

अन्दर बहू ने सुना तो वह भी आश्चर्य से बाहर आई, बोली, "क्या कहा पलटू ने दावा कर दिया है ?"

गोपाल ने बहू को लक्ष्य कर कहा—"हाँ, उसी पलटू ने मुझ पर दावा कर दिया है जिसे तुमने नैहर भेजा था।"

बहू आई थी सहानुभूति जताने न कि जली-कटी सुनने। पति की बात सुनकर तिलमिला कर रह गई, पर जवाब दिए बिना भी न रहा गया। बोली—"मैं कोई नई नैहर नही गई थी। सभी जाती है, कौन नहीं जाती ? मैंने उसे भेजा था, इसलिए उसने दावा किया है क्या, जो इतनी ठसक बोल रहे हो ? आजकल तुम माँ-बेटे की खूब बातें होती हैं। जैसा करोगे वैसा भरोगे। बन्दर की बला तबेले के सिर क्यो ? अपना कसूर मत देखना कि क्यों उसने दावा किया है। मुझे ही सब जलाने को रहते हो। मेरा अभागा करम ही ऐसा है। कभी सीधे मुँह बात ही नही की। जब कभी कुछ बात करने बैठी हूँगी तो रुला कर ही छोड़ा। जिन्दगी बीत गई, दो मीठी बात के लिए तरस गई।"—कहते-कहते वह रोने लगी और क्रोध के मारे पैर पटकती हुई घर मे चली गई।

बहू के इस क्रोध का गोपाल पर जैसे असर ही नही हुआ। अन्नदा साँस खींच कर रह गई। एक आफत अभी कान से सुनी ही थी कि दूसरी आफत साक्षात आँखों के सामने नाच गई। बहू उसका भी नाम सान गई है, यह सोच कर उसे दुख हुआ। दावे की बात छोड़ कर वह गोपाल को डाटने लगी—"गोपाल ! तुझे लाख बार समझाया कि बहू से बिना काम गुस्सा मत किया कर। दावे की सुन कर वह बेचारी दौड़ी-दौड़ी आई और तुने झिड़क दिया। मन दुखने की बात तो है ही। तनिक-तनिक सी बात पर घर मे कलह मचा देता है।"

गोपाल निर्विकार भाव से दस रुपया जुरमाना देकर चला गया। उधर पंडित रामजियावन की खुशी का ठिकाना नही था। दस पैसे ही जुरमाना क्यो न होता। गोपाल पर उन्होंने जुरमाना करा दिया, यही उन्होने भरतपुर का किला जीत लिया। गोपाल की सारी शेखी किरकिरी हो गई, ऐसा उन्होंने समझा।

गोपाल पर दस रुपया जुरमाना हो गया, यह बात सारे गाव मे आँधी की तरह फैल गई। जिसने सुना वही आश्चर्य से रह गया। पर गोपाल की यह हाल थी कि जैसे उसे कुछ हुआ ही नही। जुरमाना हो जाने से उसकी शान कितनी घट गई, इसकी परवाह न थी। बहू ने सुना तो उसने कुछ न पूछा। पूछने पर उसे दो खरी-खोटी सुनने को मिलेगी, इसलिए वह चुप ही रही।

अन्नदा के चेहरे का तो जैसे पानी ही उतर गया। इस घर की इज्जत अब घटती जा रही है, यह समझते उसे देर न लगी। जिस इज्जत को बचाने के लिए उसने अपने को समर्पित कर दिया था, वह इज्जत इस प्रकार उसकी आँखो के सामने ही नष्ट होती जायेगी, ऐसी आशंका होते ही वह काप उठी। उसे अपने घर-परिवार की स्थिति बडी दयनीय-सी लगी। उसे ऐसा महसूस हुआ कि अब वह वक्त आ गया है कि जो चाहे वह ठुकरा कर चला जाय।

अन्दर से वह बुझी-बुझी रहती ही थी, बाहर से भी बुझी-बुझी रहने लगी।

दु:ख क्या है—मन की अनुभूति। सुख की भी इसी प्रकार गति है। कोई बात मन को जितना प्रभावित करती है, वह उतने ही आवेग से मन को उद्वेलित करती है।

अन्नदा अपने गिरे दिनो से उठी थी। इस घर में आते ही उसे जिस अभाव का आलिंगन करना पडा था, उसे उसने अपने सकल्प से ठेल कर

एक अपूर्व गौरव प्राप्त किया था। वही गौरव इतना क्षणिक होकर इस प्रकार उसके जीवन में ही नष्ट हो रहा था। क्यो उसे नष्ट होना चाहिए? क्यों एक अनचाहे विषाद के अंधकार मे भटकना पड़ेगा? देखते ही देखते परिवर्तन क्यो? पर इस जगती मे स्थिर क्या रह पाया है? समय के रथ पर सब को चलना पड रहा है। जो जीवित है, जो चेतन है, जिसे भोगा जा सकता है, वह सब गतिमान है। स्थिर है तो केवल मृत्यु—जड़। जहाँ सुख-दुःख की क्रिया-प्रतिक्रिया की कोई अनुभूति नही। जहा कुछ घटता नही, कुछ बढता नही। सब कुछ स्थिर और निश्चेष्ट।

इसलिए यहा क्या पाना और क्या खोना? जो मिलता है वह एक संयोग है और जो खोता है वह भी महज एक सयोग है। पर पाने की जो एक सुखानुभूति होती है, जो आत्मसतोष होता है, लगता है वही सब कुछ है। उसे पकड कर, जकड कर जीते रहने की एक चाह होती है। वह न बीते, इसलिए उसे घेर कर बाध रखने का सतत् प्रयास होता है, पर काल-पुरुष वैसा कहां रहने देता है? आंख-मिचौनी का खेल खेलकर वह अनजाने चला जाता है और तब एक अनचाहा, अप्रिय सत्य अपनी सर्वस्व कटुता से आ खड़ा होता है, तो उसे स्वीकार करने के सिवा अन्य मार्ग नहीं रहता।

इन्ही उलझनो मे वह खोई थी कि एक दिन घिसियावन उसे दिखाई दिया। वह चुपचाप दरवाजे के सामने से ही चला जा रहा था। उसे देख कर भी नही रुका, यह देख कर अन्नदा को चोट लगी। सोचा—एक दिन यही आदमी चौबीस घटे यहीं रहता था। जब देखो तब मालकिन-मालकिन कहता रहता था। आज दो मिनट खड़ा भी नहीं हो सकता। यही दरवाजे के सामने से चला जा रहा है मुझे देखा, भी, पर ऐसा व्यवहार कर रहा है जैसे वह इस घर के लिए अपरिचित हो। ठीक है, अब यह बड़ा आदमी हो गया है, लेकिन क्या मैं इतनी छोटी हो गई हू कि वह देख कर राम-राम भी न करे। उससे रहा न गया तो खुद ही आवाज दी—"सरपंच!"

असल मे वह अन्नदा से आँख बचाकर चला जाना चाहता था। गोपाल पर जुरमाने ने मामले को लेकर वह उनसे कतरा रहा था। पर जब अन्नदा

ने खुद ही आवाज दी, घिसियावन ठिठक कर खड़ा हो गया और वहीं से बोला—"मुझे बुलाया क्या मालकिन ?"

"हा तुम्हे ही बुला रही हू सरपच !"

यह सुनकर जब वह अन्नदा के पास आया तो फिर बोली—"जब तुम घिसियावन थे तब मैं मालकिन थी, पर अब, जब कि तुम सरपच हो गए हो, मुझे मालकिन कहो, अच्छा नही लगता। मैं तुम्हें पहले घिसियावन कहती थी, पर अब तो सरपच कह कर ही बुलाना चाहिए। तुममे जो फर्क हो गया है उसका मान तो करना ही चाहिए। पहले तुम इस दरवाजे से होकर जाते थे तो बिना दो घड़ी बैठे, बिना राम-राम किए नही जाते थे, पर अब स्थिति दूसरी है । अब देखकर भी अनदेखा कर देते हो। जान-बूझ कर आख फेरे लेते हो। ठीक भी है। तुम्हें अब ऐसा करना भी चाहिए। अपने पद के बड़प्पन को कायम रखने के लिए यह जरूरी है। कहीं ज्यादा उठने बैठने से, आदमी की कीमत घटती ही है। तुम्हे अपनी मर्यादा बढाना है, इसलिए इस बातो का ध्यान रख रहे हो। यह ठीक करते हो।"

घिसियावन अन्नदा की बातें सुनकर बहुत झेंपा। लज्जा के मारे खिसिया कर बोला—"ऐसी बात नही मालकिन ! शरमिंदा क्यो करती हो ? किसी जरूरी काम से जा रहा था, इसलिए इधर न देख सका।"

"लो भला, शरमिंदा क्यों करूँगी ? तुम काम-काजी आदमी ठहरे, लोगों की इस तरह की बातो पर ध्यान देते रहे तो हो गए सारे काम ! बहुत जरूरी काम मे जा रहे हो ? थोड़ी देर बैठ नही सकोगे क्या ?"

"बैठूंगा क्यो नही; लाख काम रहे, पर आपकी बात टालने की ताकत आज भी मुझमें नही।"—कह कर वही मूढे पर बैठ गया।

अन्नदा हँसी, न जाने अपनी स्थिति पर, न जाने घीसू की बात सुन कर। हँसती हुई यह कहकर कि अभी आई, वह घर मे भीतर चली गई।

घिसियावन चुप बैठा रहा।

थोड़ी देर में अन्नदा एक डलिया मे थोड़ा-सा मीठा और एक लोटा पानी लेकर आई और उसके सामने धर कर बोली—"लो पानी पी लो।"

घिसियावन मीठा तथा पानी देखकर ही-ही करने लगा और बोला—

हैरान थे कि आखिर उन्हें हो क्या हो गया जो इस तरह सारा कसूर अपने माथे ले रहे हैं? जब वे कुछ न बोले तो फिर मजबूरन फैसला करना पड़ा।"

अन्नदा खीझकर बोली—"वह क्या कहता कि मैंने पलटू को कुछ नहीं कहा? ऐसा वह क्यों कहता? तुम सब विलायत से तो नहीं आए थे। सच्ची बात का पता तो तुम सबको था। क्या तुम भी मानते हो कि पलटू को गोपाल ने मारा था?"

"मेरे मानने न मानने से क्या होता है? वहाँ तो कानून को मानना चाहिए। कानून सबूत की आँखों से देखता है। जो कानून को अपनी आँखें नहीं दे पाता, उसका फल ऐसा ही होता है। क्या सही है क्या गलत है, इस सब का फैसला हम लोगों के सोचने और जानने से नहीं होता। वहाँ गवाही और सबूत से जो सही साबित किया जा सके, उसे ही सही मानना पड़ता है।"—सरपंच ने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

अन्नदा ने तर्क किया—"सरपंच! भगवान को तो मानते हो?"

"मानता तो था मालकिन, पर अब जग की रीति देखकर उस पर से विश्वास उठता जा रहा है। यों ही समझ लो, कि अब उसे मानने की फुरसत ही नहीं है।"—वह अन्नदा के सामने अपने मन की बात छिपा नहीं सकता था। अन्नदा को उसने जितना देखा था, उतना समझा भी था।

अन्नदा ने आश्चर्य से कहा—"क्या कहा, ईश्वर को नहीं मानते?"

"हाँ मालकिन! ईश्वर मन से माना जाता है। उसे मानने के लिए वैसा विश्वास चाहिए। तुम्हीं देखो न, दुनिया किस तरह तेजी से बदलती जा रही है। हमारे-तुम्हारे देखते-देखते जमाना कितना बदल गया। यह बदलने की रफ्तार इतनी तेज है कि हम सोच ही नहीं सकते कि कल क्या होगा। यह दुनिया और इसके बदलते हुए तमाशों को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि ईश्वर बहुत पुरानी चीज हो गया है। वह जमाने के साथ नहीं चल सकता। वह बुड्ढा हो गया और उसके हाथों में कुछ कर सकने की ताकत नहीं रही। उससे कहीं ज्यादा ताकत अब आदमियों की हो गई है। कल का भगवान, आज के आदमी से दहशत खाने लगा है।

तुम तो मुझे सारी जिन्दगी से देखती आ रही हो, मैं क्या था और

है, उसे उससे पैदा हुई लड़की को लेने पड़ेगी, विश्वामित्र को मारो।' बेचारों ने जब देखा कि यहाँ जान-माल दोनों के लाले पड़े तो विश्वामित्र ने लडकी ले ली और नाटक खत्म हो गया।

यह है जनता की ताकत। जनता ही आजकल जनार्दन है। इस गाँव मे काफी मातबर और पढे-लिखे लोगों के होते हुए भी जनता ने मुझे ही सबसे लायक मानकर चुन लिया। भगवान होता तो उसे देखना चाहिए था कि यह ठीक नही हो रहा है, सबको अकल देता, सब सही काम करते, किसी भले आदमी को चुनते।

इसलिए मैं कहता हूँ कि भगवान आज की दुनिया के लिए बहुत पुरानी चीज हो गए है। दुनिया का जैसे सब कुछ बदल गया वैसे भगवान की गद्दी भी बदल गई।

पहले एक भगवान होते थे। अब जनता भगवान हो गई है। जिन पर जनता प्रसन्न हो जाय, उसके चरणों मे सभी रिद्धी-सिद्धी आ गई। मै तो जब से सरपच चुना गया इसी जनता-जनार्दन की पूजा करता हूँ। इसी की पूजा और प्रसन्नता मे लगा रहता हूँ। इसकी कृपा बनी रहे तो सारी दुनिया अपनी मुट्ठी मे है।

अब तुम्ही बताओ मालकिन! इस साक्षात् भगवान के आगे उन अनजाने-अनदेखे भगवान को कैसे मानूँ या कैसे उस पर विश्वास करूँ? जो भगवान बिना पात्र का विचार लिए दुनिया का सब सुख लिए खडा है, उसकी जय-जयकार छोड कर स्वर्ग के सुख के कए भगवान को कहाँ खोज कर नाक रगडूँ।

अन्नदा भौचक्की-सी किसी वक्त के भोले-भाले आदमी का मुँह देख रही थी। वह स्वप्न देख रही है या सच है, उसे यही विश्वास नहीं हो रहा था। यह क्या बक रहा है? इन थोडे दिनो मे वह क्या-क्या सीख गया। उसे इस आदमी का वह दिन याद आया जब वह उसके यहाँ काम करता था।—वह जब पढना सीख गई, अपने खाली वक्त मे रामायण लेकर बैठ जाया करती थी। मुझे रामायण पढ़ते देखता तो यह भी कोई हाथ का काम लेकर आ जाता और पोथी को नमस्कार करके बैठ जाता। भगवान राम की कथा को वह बडे मनोयोग से सुनता। कितने ही प्रसंगों

पर प्रेम से गद्‌गद् हो कर उसके बहते हुए आँसू मैंने देखे थे। राम की वह कथा, जब उसके हृदय मे सम्पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से उतरती थी तो कैसे उसके प्रेमाश्रु छलकते थे ! उसका रोम-रोम भगवान की महिमा मे पुलकित हो जाता था, ऐसा मेरी इन आँखों ने कितनी ही बार देखा। जब पूजा करती थी, तो फूल न जाने कहाँ-कहाँ से वह लाकर जुटाता था। कहता था, भगवान की पूजा मे मेरा इतना ही हाथ सही। कोई भी बुरा काम करते उसे ईश्वर का भय होता था, उसे यह पता था कि हर काम ईश्वर करवाता है। बुरा काम करने पर भगवान उसका दण्ड देता है। नीति अनीति करने से पहले उसे ईश्वर की निगाहो से तोलता था।

पर आज जैसे सब कुछ पलट गया। इतने गहरे सस्कारों की शक्ति इस सहजता से कैसे मिट गई ! वह इन थोडे दिनों मे ही कैसे इस प्रकार उल्टी-सीधी बात करने लगा। कैसे उसने एक नया ईश्वर पैदा कर लिया ! कैसे वह सारी नीति-अनीति को तिलांजलि दे बैठा।—यह सब सवाल अन्नदा के लिए रहस्य बन गए।

विश्वास तर्क से नही पैदा होता, वह अन्त.करण की चीज है। बिना श्रद्धा के विश्वास कैसा ! घिसियावन के विचारो को पलटने के लिए वह बहस नही करना चाहती थी। उसने केवल इतना ही कहा—"घिसियावन ! पूजा के लिए भगवान पर विश्वास नही करते तो मत करो; पर बुरे कामों को करने से पहले ईश्वर का जो भय सामने आकर खडा हो जाता है, क्या उसे भी नही मानते।"

घिसियावन कुछ सोच मे पड गया। वह क्या जवाब दे। कुछ देर बाद सोचकर बोला—"यह तो अपने मन की बात है मालकिन ! कोई काम या विचार बुरा तब होता है जब मन में वैसी बात आये। मन से अगर उसे बुरा मान ही ले तो वह करे ही क्यों ! चूंकि मन के सामने किसी काम के करने के पहले कुछ बुरा दीखता ही नहीं, मन में बुरा लगता नहीं, तो फिर ईश्वर का भय कैसा !"

यह इस हद्द तक पहुँच गया है, यह किसी भी काम की अच्छाई बुराई को अपनी निगाहों से तौलने लगा है। इस तौल में उसे ज
है उसे ही सही मान कर करता है।—यह समझ कर भी अ

शात स्वर मे कहा—

"जब तक दुनिया है, उसमे लोग है, उनका समाज है, उनका धर्म है उनकी मान्यतायें है, तब तक तुम्हारे अपने मन की ही बात तो बहुत बडी नही, । अपने धर्म, देश और समाज की निगाहो मे जो बात बुरी है, जो काम बुरा है, उसे तुम अपने मन से सोचकर कैसे सही मान सकते हो! सामाजिक नैतिकता को तो समाज मे रहते हुए मानना ही पड़ता है। अपने व्यक्तिगत विचारों की उच्छृखलता मे कही अपनी ही अधिक हानि हो जाने की आशका बनी रहती है।"

घिसियावन तुरन्त बोला—"यही तो बात है मालकिन! दुनिया मे जितने आदमी उतने ही तरह के लोगो के अपने विचार! अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग। हर आदमी अपनी ही बात को सही मान रहा है। और यही तक होता हो गनीमत थी। वह दूसरों को भी मजबूर करता है कि वे भी उसी की बात को सही मान कर चले, इसलिए सबको खुश नही रखा जा सकता। कोई भी काम क्यों न करो, कुछ न कुछ नाराज होने वाले लोग मिल ही जायेंगे। लोगो की नाराजी तो बनी ही रहेगी।"

इतने मे कही से घूमता हुआ बिहारी आ गया। उसके आ जाने से बातो का सिलसिला बन्द हो गया। घिसियावन उठ कर जाने लगा, बोला—"चलूँ मालकिन, बडी देर हो गयी।"

बिहारी बोला—"सरपच मेरे आते ही कैसे चल दिए?"

"बडी देर से बैठा हूँ भइया, कही काम से जा रहा था।"

अन्नदा ने भी कहा—"हाँ हाँ जाने दो, सचमुच बडी देर हो गई। मैंने ही रोक लिया था।"

घिसियावन तब तक चला गया। बिहारी ने पूछा—"चाची उससे क्या बातें हो रही थी? गोपाल के जुर्माना के बारे मे कुछ कह रहा था क्या?"

अन्नदा ने कहा—"नही रे! जुर्माना के बारे मे क्या कहता। मैंने भी उस बारे में कुछ नहीं कहा। बस, ऐसे ही इधर-उधर की बातें। इधर से जा रहा था मैंने ही बुला कर बैठा लिया। सो भइया इसकी

अन्नदा एक लम्बी साँस लेकर बोली—"होगा, अपने को क्या ? जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा, मै तो यह जानती हूँ ।"

अन्नदा उठकर चली गई और विहारी भी।

जब आदमी को अपनी औकात से अधिक मिल जाता है। तो वह अपनी मर्यादा भूल जाता है। यहाँ तक तो फिर भी निभ जाए, पर जब अमर्यादा का विष उसके वशधरो के खून मे घुल जाए तो वह अपनी जड को ही खाने लगता है।

पडित रामजियावन की यजमानी से अच्छी चलती थी। पूजा, कथा, गोदान, संकल्प, मुडन शादी-ब्याह कुछ भी तो बिना पडित के पूरा नही होता, तो इसके चलते पडित को अनाज तथा पैसे दोनों का लाभ था। जब अराम से खाने को मिले तो काम कौन करे। बिना मेहनत की कमाई पर पलने वाला रामजियावन का लडका टुच्ची गुडई करने लगा। सगी साथी की कसर सरपंच धिसियावन के छोटे लडके "छोटकउवा" ने पूरी कर दी।

वैसे तो अपनी सरकार मद्यनिषेध का बडा ढिंढोरा पीटती है, पर गाव देश की ऐसी कोई हाट-बाजार नही छोड़ी जहा चरस, अफीम, गाँजा, भाग और देसी शराब के ठेके न खोले हों। इसके साथ ही इतना पुण्य कार्य अवश्य किया है कि सडक के किनारे एक बडा-सा बोर्ड लगा दिया है जिस पर लिखा है—"शराब जहर है।" इसके नीचे ही शराब के कारण दुखी परिवार का चित्र है। इसी बोर्ड के नीचे शराब के ठेके का वह अडडा ऐसे लगता है जैसे चूहों के बीच मे बिल्ली मौसी को राम-नामी कंठी पहना कर बैठा दिया गया हो।

इन अड्डों ने गांव की युवा पीढी को कितना भ्रष्ट, निकम्मा, आवारा बना कर टुच्ची गुंडई की राह पर डाल दिया है, इसका लेखा-जोखा किसी

किताब में तो नहीं, पर इससे देश की युवा-शक्ति कितनी गुमराह हो गई है, यह चारों तरफ देखने को मिलता है।

इन अड्डों पर ऐसे ही हरामखोर लड़कों की जमघट होती है। इन्हीं लड़कों में पंडित राम जियावन का लड़का भी एक सरगना था। राहजनी और छीना-झपटी में उसने रुतबा पाया था। लड़के की चाल-ढाल संगति सोहबत देखने का एक तो पंडित राम जियावन को अब अवसर भी नहीं था और देखें भी तो लड़का उनकी कौन-सी परवाह करता था।

इधर घिसियावन के लड़के भी बहती गंगा में हाथ धो रहे थे। घिसियावन की गैरहाजिरी में बड़कऊ (बड़ा लड़का) मोहर लगाऊ सर-पंच हो गया था। किसी भी कागज पर मोहर लगाने की कीमत वसूलने से नहीं चूकता था। गरीबों में बाटने के लिए तथा [illegible] को [illegible] देने के लिए सरकार की तरफ से चीनी, मिट्टी का तेल तथा कपड़े का कोटा किस प्रकार सब के नाम का लाकर वह पैसे बना रहा था तथा लोगों के पूछने पर कह देता था कि इस बार अपने गांव का कोटा ही नहीं मिला या थोड़ा मिला।

छोटकऊ (छोटा लड़का) बड़े भाई की इस जन-सेवा में अपनी भूमिका अदा कर पाने का अवसर न पाकर छटपटा रहा था। इस छीना-झपटी में वह कोरा रह रहा था। बैल की तरह खेती के काम में मरते रहने और मोटा-झोटा खाकर चुप सो जाना ही जैसे उसकी नियति में था। शायद ऐसे चलता भी रहता, पर उसकी बहू ने एक दिन उसे खोद ही दिया। खोदती क्यों न, वह देख रही थी कि जिठानी की बड़ी ठसक है। फेरी वाले दरवेश का जब भी फेरा लगता, जिठानी जी सब से पहले उसकी गठरी खुलवाती तथा चोटी, टिकुली, लाली, ईंगुर हंस-हंस कर लेती तथा नित नए सिंगार से सजती रहती। उसी सरपंच की यह बहू पैसे-पैसे को तरसती रहती। क्यों—?—क्योंकि उसका मर्द गावदू है। बस इस विभेद का बीज जब अंकुरित हुआ और छोटकउवा ने रग पकड़ा तो घिसियावन के सभाले नहीं सभला।

छोटकऊ भी जहां दांव पाता सरपंच के नाम को भुनाने में न चूकता। उसके इस लद-फंद से घिसियावन को कभी-कभी बड़ी परेशानी भी

पड़ती थी, पर लडका था कि अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति में बाप के रिश्ते या उसके पद की मर्यादा को बालाए-ताख रख रहा था।

एक दिन तो उसने गजब ही कर दिया। पडित राम जियावन का लड़का अपनी चाल-ढाल से बदनाम हो चुका था। एक चोरी के सिलसिले में पुलिस ने उसे घर दबोचा और बद कर दिया। पडित के तो होश हवास उड गए। आगे क्या होगा, यह भगवान जाने, पर अभी तो लौंडे को जमानत पर छुड़ाना होगा। जमानत के लिए उन्हे परम हितैषी सरपच घिसियावन ही दिखा। सरपच ने जमानत की हामी भरी और पेशी के दिन अदालत मे हाजिर होने को तैयार हो गया। पर नियति को कुछ और ही खेल खेलना था। हुआ यह कि अदालत के पुकार के समय तक घिसियावन किसी कारण वश कचहरी पहुच न पाया, उधर पडित राम जियावन अपने सुपुत्र की जमानत के लिए तड़फडा रहे थे कि इतने मे घिसियावन का लडका छोटकऊ दिखा। लपक कर उसे पकडा और कहा —"सरपच तो आए नही। कचहरी में पुकार हो गया है, बचवा की जमानत करवानी है, तो बेटवा तुम ही सरपच की जगह हाजिर होकर जमानत ले लो, यहा तुम्हे कौन पहचानेगा।" यह कहते हुए उसे लेकर वकील के पास पहुचे, कागजों पर दस्तखत करवाया और अदालत मे हाजिर होने को चल दिए।

छोटकऊ ठिठका—"पडित जी! मुझे क्या फायदा होगा?"

पडित जी की दृष्टि को इस समय अपने लडके मे जमानत के सिवा कुछ भी सूझायी नही दे रहा था। "जाको विधि दारुण दुख देही ताकि मति पहिले हरि लेही," वाली स्थिति थी। उसी हड़बडाहट मे बोले—बेटवा देर मत कर। जो तू चाहेगा, सब कर दूँगा। पहले उसको तो हवालात से छुड़वा। अरे हा, ले यह फेंटा सिर पर बांध ले, इसमे भारी भरकम दिखने लगेगा मजिस्ट्रेट साहब के सामने। यह कहते हुए उसे लेकर कोर्ट रूम मे हाजिर हो गए।

पडित के वकील ने मजिस्ट्रेट के सामने कागजात पेश करते हुए कहा —"हुजूर, जमानती हाजिर है।" मजिस्ट्रेट ने कागजात देखे और जमानती की ओर एक नजर डालकर पूछा—"तुम्हारा नाम?"

"सरकार, घिसियावन !" छोटकऊ ने तडाक से उत्तर दिया।

मजिस्ट्रेट का दूसरा प्रश्न उभरा—"तुम मधुपुर ग्राम पचायत के सरपच हो ?"

"हा, हुजूर !" छोटकऊ की जवान कुछ लडखडा रही थी।

मजिस्ट्रेट ने तेज निगाहों से उसे घूरा और डपट कर पूछा—"तुम्हारी उम्र क्या है ?"

छोटकऊ कुछ जवाब दे कि इसके पहले एक अन्य आवाज उभरी,—"हुजूर गुस्ताखी माफ हो। यह लड़का घिसियावन नहीं, बल्कि घिसियावन का वेटा है। यह अदालत को धोखा दे रहा है।"

मजिस्ट्रेट ने देखा एक नौजवान दूसरे सिरे पर खडा होकर यह कह रहा था। उसी के घर मे चोरी का यह केस था। मजिस्ट्रेट को पहले भी कुछ शक हुआ था। यह भडा फोड़ होते ही रामजियावन तो न जाने कब चुपके से कमरे से बाहर हो गए। छोटकऊ की तो सिट्टी-पिट्टी गुम।

मजिस्ट्रेट की एक डपट से ही छोटकऊ ने सब उगल दिया। आवड़-धावड मे सिर पर लपेटा गया फेटा खुल गया और छोटकऊ ऊपर से नीचे तक काप गया। जिसकी जमानत लेने आया था वह हथकडी मे जकडा खड़ा यह समझ ही न पाया कि यह सब कैसे हो रहा है। मजिस्ट्रेट ने कोर्ट मार्शल को आदेश दिया कि इस आदमी को अदालत को धोखा देने के आरोप मे वंद कर चालान पेश करो।

हुक्म की तामील हुई। पडित के लड़के के हाथों की हथकडी खुलवाने वाले हाथ खुद लोहे के कगन मे जकड़ गए।

अदालत ने कमरे मे यह सब जब हो रहा था तो अदालत के बाहर एक और ही दृश्य उपस्थित हो गया था। हुआ यह कि सरपच जब कचहरी पहुचा तो पडित राम जियावन वदहवास बौखलाए मे मिले। पूछने पर सारी स्थिति का पता चला। यह जान कर कि छोटकऊ भी वद हो गया पडित के चलते, बस फिर क्या था, दोनो मे तू-तू मैं-मैं शुरू हो गई और दोनों भीड़ के लिए तमाशा हो गए। दोनो एक दूसरे को दोष देते जा रहे थे और लोगो की हसी का कारण बनते जा रहे थे।

एक भले आदमी नें आगे वढ कर समझाया—"करनी का फल तो

भोगोगे ही। औलाद भी अपना ही पुण्य और पाप होती है, अत. उसकी करनी के फल मे भी भागीदार होना पडता है। इसलिए जाओ अपने घर और अब एक की बजाय दो जमानत का इन्तजाम करो। हुआ क्या है कोई फासी थोडी ही लगी है। हवालात मे ही तो वद है। जमानत करा कर घर ले जाना और केस लडते रहना।"

अब तक दोनो का उबाल भी ठडा पड चुका था और दोनो समझ गए थे कि दोनो की गलती है। न सरपच देर करता, न पंडित छोटकऊ को कहता।

देर रात जब दोनों घर लौटे तो किसी को पता न चला कि क्या हुआ, पर सवेरे यह खबर सबको मालूम हो गई। हो गई तो हो गई। क्या कर लेगा कोई।

कोई कुछ कर तो नही लेता, पर स्वय हो जो होता जाता है, उससे बचने का उपाय भी नही रहता। दोनों जुट गए अपने-अपने सपूतों की जमानत कराने के चक्कर मे।

आदमी कुछ सोचता है। मन की उस सुखद कल्पना को वह साकार देखना चाहता है। मन का वह आनन्द एक दिन प्रत्यक्ष होकर उसके जीवन में उतर आए, ऐसी उसकी इच्छा होती है। पर अक्सर दैवयोग ऐसा होता है कि सब उलटा हो जाता है। अकसर कुछ अनचाहे अवांछित को ही गले लगाना पड़ता है। उसी को जीवन का सत्य मानकर भोगना पडता है।

अन्नदा ने कितनी ही सुखद कल्पनाओ और आशाओं के बीच अपना घर बनाया था। उसे वैसा पाया भी था, पर वह इतना क्षणभगुर होगा कि उसके जीवन मे बालू के महल-सा ढह जायेगा, ऐसा उसने सोचा भी न था। अपने अतीत की स्मृति से आज वह सिहर उठी। जो सोचा था वह

तो आज हवा हो गया, जिसकी कल्पना भी न थी वही साक्षात खडा था।

बहू के उग्र स्वभाव से अन्नदा हमेशा बची सी रहती थी। कब किस बात पर तुनक जाय और एक कांड खडा कर दे, इस ओर से वह बडी सावधान रहती थी।

गोपाल ने उस दिन हँसी में केवल यही तो कहा था कि उसी पलटू ने मुझ पर दावा कर रखा है जिसे तुमने अपना हितैषी बनाकर मायके भेजा था। बस, इतने ही पर तो वह बरस पड़ी थी। गोपाल की उस बात का मेल उसने कहाँ बैठाया? उसे शक हुआ कि मेरी शह पाकर ही गोपाल वैसा बोलता है।

इस प्रकार जब वह तिल मे ताड खोजती है तो अन्नदा का इस घर मे सँभलकर चलना स्वाभाविक हो गया। वह इस बात का बडा ध्यान रखती थी कि जहाँ तक हो सके, बहू तनिक-तनिक सी बातो मे तिनगे नही। उस घर मे झगडा लगा रहने जैसी कोई बात न थी। न भाइयो का बँटवारा, न देवरानी-जेठानी के ताने। कहने को अन्नदा और सदा ये ही तो थी। भगवान की दया से घर ने खाने-पीने की भी तकलीफ न थी। पर जब आदत ही बुरी हो तो कारण पैदा होते देर नही लगती।

कभी-कभी मन मे आने वाली सनक के अनुसार बहू एक दिन खाना बनाने नही उठी। अन्नदा ने रसोई का सारा काम किया। गोपाल दोपहर को खाने आया तो अन्नदा परोसने लगी। अचानक बहू भी आकर रसोई मे खड़ी हो गई। खाना-परोसते वक्त इस प्रकार बहू के आकर खडी हो जाने का कारण अन्नदा को पता न लगा। गोपाल भी कुछ न बोला, पर जब उसने खाना परोस कर गोपाल के आगे थाली रखी और गोपाल खाने लगा तो बहू ने झपट कर अन्नदा के पास से घी की मटकी उठा ली और गोपाल की थाली मे ढेर सारा घी उड़ेलते हुए अन्नदा को लक्ष्य कर बोली—

"अम्मा! इस तरह औरतों को खिलाया जाता है। ये मर्द-मानुस है, अँगुली से घी छिडक कर दाल महकाने से तो यह शरीर चार दिन मे खोखला हो जायेगा। कमाना उन्हे पडता है। औरतें-बेटियाँ हल के आगे न चलेंगी।"

वहू की ये बातें सुनकर अन्नदा ठक् से रह गई। कुछ देर तो वह बोल ही न सकी। उसने गोपाल की ओर देखा। गोपाल उसी तरह सिर झुकाए खाना खाता रहा। बल्कि अन्नदा को तो ऐसा लगा जैसे इस प्रकार घी का डालना तथा वहू की बातें उसे कुछ सुहानी ही लगी, तभी तो वह कुछ नहीं बोला। वहू की इस हरकत से उसे अगर कुछ शिकायत होती तो उसके चेहरे का भाव कुछ और ही होता। वह अपने मन में सोचता होगा—माँ खिलाने-पिलाने में कजूमी करती है।—इस प्रकार का ख्याल आते ही उसे मन में बडी लज्जा-सी लगी। वह लाज कहीं और न बढ़ जाय, अतः बोली—

"वहू, क्या गोपाल से भी प्यारा मेरा कोई और बैठा है जो इसे खिलाने-पिलाने में कपट करूँगी। जिस तरह से तुमने घी डाला है, यह एक दिन का जोश है, गृहस्थी में हमेशा ऐसा चलता रहे, यह संभव नहीं। यह गृहस्थी है, सब देखकर चलना पड़ता है। 'कभी घी है घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वह भी मना' वाली हालत न होने पाए, ऐसा सोच कर चलना पडता है। पता है, भैंस को ब्याने में अभी छः महीना बाकी है। तब कहीं जाकर इस घर में दूध-घी नजर आयेगा। इस बीच सब कुछ जो है उसी से चलाना पडेगा। अतिथि-मेहमान, तिथि-त्योहार सब कुछ लगा रहता है। यह गृहस्थ का घर है। न जाने कब कौन आ जाय? अपना खाया कौन देखता है। घर की इज्जत बनी रहने में अपनी इज्जत है। बिना आगा-पीछा सोचे आज सब चाट-पोंछ कर बैठ जायें और कल कोई दरवाजे पर आ गया तो घर-घर घी-चावल मागने में अपनी ही तो बेइज्जती है। देने वाले देंगे, मगर मन में यही सोचेंगे कि कैसा घर है, एक मेहमान आया तो कलछी लिए घर-घर घी माँग रही है। अपने घर की इज्जत अपने चलते नहीं बिगाडनी चाहिए। पैर उतना ही पसारना चाहिए जितनी चादर हो। नगा हो जाने पर लोग चादर की छोटाई नहीं देखते, सब खुले पैर की ओर ही अँगुलियाँ उठाते है।

'गोपाल के सामने आज तेरे जैसा परोस दूं और कल बिना घी की थाली सरका दूं तो यह जीने न देगा। गोपाल को मैंने खिला-पिला कर बड़ा किया है वहू! तू आज आई है। मेरे कोई और बेटा होता तो

इस तरह खड़ी होकर तेरी यह निगरानी अच्छी लगती। खाना-पीना तो इसी ने है। कोई और नही बैठा। एक मदा है। तू ही तो रोज उसे खाना परोसती है, बता कितना घी खिला देती है? इस तरह उलटा-सीधा मत बोला कर।"

"घर के पित्तर बैठे रहे, बाहर के पिंड माँगे। यह मुझे नही सुहाता मैं आज आई हूं तो देख भी रही हू कि क्या खिलाती हो, कैसे खिलाती हो? मैं इस घर मे आँख मूँद कर नहीं रहती। सब देखती हू। पानी पीकर देह नही सजती।" बहू की इस बात का स्पष्ट संकेत मदा की ओर था। मदा की शारीरिक गठन बडी सुडौल थी। अपनी हम-उम्र लडकियों मे शरीर को देखते हुए वह सबसे सयानी लगती थी। अपनी बात खत्म करते-करते बहू वहाँ से चली गई।

अन्नदा को लगा जैसे उसके मुँह पर किसी ने थप्पड मार दिया हो। बहू के जाते ही वह भी रसोई से निकल गई। गोपाल कुछ और लेगा या नही, यह पूछने का उसका मन नही कर रहा था।

उसका मन भारी हो गया। वह चुपचाप जाकर खाट पर पड रही। —माँ अपने बेटे को खिलाने मे कजूसी करती है।—लोग यह सुन कर क्या सोचेंगे? ऐसा ख्याल आते ही उसे अपने भाग्य पर रोना आया। जिनके लिए उसने यह सब किया, वही उसे इस तरह लाछित करे, इससे बढकर दुर्भाग्य और क्या होगा? जिस सौभाग्य को पाने के लिए उसने सब कुछ किया, उसका वही सौभाग्य उसके लिए कितना दुर्भाग्य बन गया? लोग बेटा-बेटी को रोते है, उनके लिए तरसते हैं, पर वही जब हो जाते हैं तो यह दिन आने पर इसलिए रोना पडता है कि वे है। उन्ही के कारण रात-दिन कलपना पडता है। केले की जात अपने फल से नष्ट हो जाती है।

"माँ! रोटी दे।"—रसोई मे गोपाल की आवाज आई। अन्नदा सुनकर भी नही उठी। जिस गोपाल को खाना परोसते हुए उसकी बहू से वह इस तरह लाछित हुई और वह चुप बैठा रहा, उसी को उठकर फिर खाना देने जाय, यह अन्नदा के मन ने स्वीकार नही किया।

"अरी माँ! बहरी हो गई? रोटी दे न!"—दुबारा जब गोपाल

की जोर की आवाज आई तो वहू खुद वड़बडाती हुई आई—"अब थोड़े ही उठेगी ? उन्हें तो तीर लग गया। यह हाल है इस घर में? छींक्ते नाक काटी जाती है। हे भगवान! कैसे कोई मुँह भी कर रहे।" यह कहती हुई उसने गोपाल की थाली में दो रोटी रख दी।

गोपाल जब तक खा न चुका वह रसोई में बैठी रही। खाना खा चुकने पर गोपाल ने पानी माँगा। बहू ने तुरन्त उठ कर पानी दिया। गोपाल इस ढंग से व्यवहार कर रहा था जैसे कुछ हुआ ही न हो। बहू पति की प्रसन्नता और अनुकूलता पर अधिक से अधिक सेवा के लिए उतावली हो रही थी। उसके मन में ऐसा हो रहा था कि कब क्या उसके पति के मुँह से निकले और वह तुरन्त हाजिर कर दे।

गोपाल खाना खाकर चला गया। अन्नदा दरवाजे में खाट पर चुपचाप लेटी थी। गोपाल ने उसे देखा, मगर देख कर भी कुछ न बोला। रोज जैसा आज भी चला गया, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

उसे पता है कि माँ का मन दुखी है, फिर भी वह यों निर्विकार भाव से चला गया, यह देख कर अन्नदा के मन को और चोट लगी। बहू तो पराये घर से आई है उसके दुख को वह न समझेगी। मगर जिस गोपाल को मैंने अपने पेन में पाला, जो मेरे शरीर का ही एक टुकड़ा है, जो मुझ से पैदा हुआ, वही जब मेरे दुख को नहीं समझेगा, इस तरह उपेक्षित कर देगा तो जीवन में क्या आधार लेकर जीने की आशा करूं?—यही अन्नदा नहीं समझ पा रही थी।

बहू की बातों ने उसके मन में एक गहरे विषाद को जन्म दिया और गोपाल के व्यवहार ने उसकी वेदना को आँसू।

एक दिन गोपाल ने उसे 'राँड' कह दिया था तो उसके दुख की सीमा न रही। अब इस ढंग से उपेक्षित कर रहा है तो इसके लिए वह कहाँ तक सोचे। ऐसा जीवन में अब होता ही रहेगा, यह कल्पना तो उसी दिन ही हो गई थी, पर जीवन भर स्वाभिमान में जीनेवाली अन्नदा को अन्त में अपने पेट-जाए बेटे द्वारा उपेक्षा का यह जीवन बड़ा कष्टकर लगा।

किसी न किसी बात को लेकर बहू रोज एक न एक बखेडा खडा किये बिना न रहती थी। असल मे उसे सास का रहना अच्छा नही लगता था। वह उनकी स्वतन्त्रता के आगे एक काठ-सी लगती थी, यद्यपि अन्नदा ने कभी उसके किसी काम मे दखल नही दिया। किसी को कुछ लेने-देते उसका हाथ नही पकडा। सारी गृहस्थी ही बहू के जिम्मे थी। कही किसी चीज में ताला नही। वह कहती थी, जिसका अब सब कुछ है, जिसके लिए सब कुछ है, जो इस घर की अब असली स्वामिनी है, उसी से छिपाने को ताला लगाना बहुत बडी मूर्खता है। अन्नदा के ऐसे विचार होने पर भी बहू किसी न किसी बात को लेकर झाँय-झाँय लगाए रहती थी।

जब अन्नदा की यह स्थिति थी, तो बेचारी मंदा का तो कहना ही क्या? वह तो सचमुच जैसे बहू की दया पर जी रही थी। कही कोई भूल हुई नही कि बहू लडने खड़ी हो जाती थी। बच्चा रोये तो भी मंदा से ही जवाब तलब किया जाता था।

बहू के एक लडकी भी हो चुकी थी। एक दिन उसे गोद में लिए बहला रही थी कि मुन्ना कही से दौडता हुआ आया। नन्ही को हँसते-खेलते देखकर मंदा से लिपट कर कहने लगा—"बुआ! नन्नी को दैना दे मैं तेलाऊँगा।"

बहू उस वक्त रसोई मे खाना बना रही थी। इस भय से, कि कही यह रोने लगी तो भाभी अनायास गुस्सा हो जायेंगी, वह बोली—"रहने दे भइया! तू क्या खेलायेगा? अभी तो तू खुद खेलाने लायक है। तेरे से रोने लगेगी तो भाभी मुझ पर नाराज होगी।"

पर मुन्ना नही माना। बाल-हठ सबसे कठिन होता है। कहने लगा —"लोयेगी नही, तू दैता दे बछ।"

मदा ने नन्ही को गोद से उतार कर खाट पर मुन्ने के पास बैठा दिया। मुन्ना ताली बजा-बजा कर खेलाने लगा। नन्ही को खेलते देख मदा का ध्यान दूसरी ओर बँट गया।

छोटे बच्चों के लिए नन्हे बच्चे बड़े कौतूहल की चीज होते हैं, वे उसे एक तरह का अपना खिलौना समझते हैं और उस नन्हे बच्चे को खेलाने में खुद अपने को खेलता हुआ महसूस करते हैं। नन्ही अभी थोड़ा-थोड़ा ही बैठती थी। खाट पर मुन्ने की उछल-कूद में वह ऐसा हिल रही थी जैसे हवा में पेड़ का पत्ता। मुन्ना कहता जा रहा था—'तू मेली नन्नी है, मेली गुड़ी है।'—यह कहते-कहते जैसे ही उसने नन्ही को चूमा कि वह बेचारी धक्का न सह सकी। डगमगा तो पहले से ही रही थी, मुन्ने के मुँह का धक्का लगते ही तड़ाक से खाट पर से गिर पड़ी। अचानक धमाका सुनकर मदा जो हड़बड़ा कर उठी तो देखा, नन्ही नीचे गिरी है और मुन्ना भौचक्का हो मुँह बाए खाट पर खड़ा है। गिरने की आवाज सुनकर उधर रसोई में वह भी भागी-भागी आई। इतनी देर बाद नन्ही की जोर की चीख निकली। मन्दा उसे गोद में लिए सहला रही थी कि बहू ने झपट कर नन्ही को ले लिया। बहू के बिना कुछ पूछे ही मदा बोली, "भाभी! नन्ही खाट पर बैठी खेल रही थी कि अचानक गिर पड़ी।"

वह गुस्से में तो भरी ही थी, बोली—"गिर क्यों न पड़े, तेरा ध्यान आजकल किसी और ही दुनिया में रहता है। ले जाती है खेलाने को और इसे बैठा कर न जाने कहाँ क्या सोचती रहती है? आँख के सामने यह हाल है, बाहर तो तू इसे रुला-रुला कर मार ही डालती होगी। देख, यह कोई जमीन फोड़कर नहीं पैदा हुई है। तू ही लाडली नहीं है। यह बेटी के नाते नहीं बह गई है, मेरे लिए बेटा जैसी ही है। खबरदार! जो आज से इसे ले गई खेलाने। बच्चे को बहलाते मौत आती है।"—कहती हुई वह नन्ही के सिर पर हाथ फेरती जाती थी। जब मदा की ओर से नजर घूमी तो मुन्ने को सहमा हुआ खाट पर खड़ा पाया। डाँट कर बोली—"तू कहाँ था रे? कैसे खड़ा है? हजार बार कहा कि तू ही बैठकर बहलाया कर, पर मुआ सुने तब न।"

मुन्ना माँ की बातें सुनकर और डर गया। सफाई देते हुए बोला—"अम्मा, नन्नी को मैं तेला लहा था, तुम्मी लेने लगा, ये गिल गई।"

"चुम्मा ले रहा था!"—यह कहते हुए वहू ने तडाक से एक चाँटा मुन्ने के गाल पर धर दिया। क्रोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर ही शान्त होता है। मँदा पर हाथ छोड न सकी, अत मुन्ने पर ही गुस्सा उतारा। मुन्ना चीखकर भागा। सयोग से अन्नदा आ गई। अन्नदा को देखते ही मुन्ना उसकी गोद मे लिपट गया। उसे छाती से चिपका कर अन्नदा पूछने लगी—"क्या हुआ लाल! किसने मारा?"

मुन्ना सिसकियों के बीच बोला—"अम्मा ने।"

उधर नन्ही वहू की गोद मे चिल्लाये ही जा रही थी।

अन्नदा ने पूछा—"वहू! मुन्ने को क्यो मारा?"

"हाँ मारा, ऐसे ही मारा।"—वहू गुस्से से बोली।

अन्नदा को वहू का यह जवाब अच्छा न लगा। कुछ तीखी होकर बोली—"ऐसे ही क्यो मारा, बच्चे मारने के लिए होते हैं?"

"यह अपनी लाडली से पूछो।"—कहती हुई वहू वहाँ से टल गई।

मदा चुप खड़ी थी। उसके मुँह से कोई बात न निकलती थी। माँ के सवाल का जवाब उसने नहीं दिया। पर जब अन्नदा जिद्द ही कर बैठी तो बोली—"क्या बताऊँ माँ? तू तो हाथ धोकर पीछे पड जाती है। नन्ही मुझसे गिर पडी थी, अब तसल्ली हुई तेरी?"

मुन्ना जो अब अन्नदा की गोद मे चुप हो गया था, बुआ की बात सुनकर तुरन्त बोला—अम्मा! नन्नी मुझते गिल गई। मैंने बुआ से कहा कि नन्नी को खात पर बैता दे, मैं तेलाऊँगा। इतने वैता दिया। मैं उतका तुम्मा लेने लगा, वह गिल गई।"

यदि हम बच्चों मे भय पैदा कर उलटा-सीधा बोलने के लिए मजबूर न करें तो उनके जैसा निष्कपट और सत्य कहने वाला इस धरा-धाम पर कोई न मिलेगा।

अन्नदा ने मुन्ने को और प्यार से चिपका लिया। सारी स्थिति वह समझ गई। वहीं से स्वतः बोली—"वहू! इतनी-सी बात के लिए तूने मुन्ने पर हाथ उठा दिया? बच्चे डगमगाकर ही बैठेंगे। लडखडा कर चलेंगे।

चोट लगेगी, उठेंगे, चलेंगे, फिर गिरेंगे, फिर उठेंगे। बच्चे इसी तरह बैठना चलना सीखते है। गिर-गिर कर ही वे मजबूत होते है।"

वह जवाब देने से न चूकी। सुनकर वही अन्दर से ही बोली—

"तुमने पटक-पटक कर ही पाला होगा, इसलिए ऐसा कहती हो। मैं तुम्हारी रीति से न पालूंगी। मैं बच्चे को रुला-रुला कर न मारूँगी। मेरा बच्चा हँसता-खेलता रहेगा तो करूँगी, नही तो चाहे सारा काम पडा रह जाय, ठेका नहीं लिए हूँ। सब का दिल तुम्हारे जैसा पत्थर का नही होता।"

वहू ने यह बात क्यो कही, यह समझते अन्नदा को देर न लगी। कभी उसी ने ही बातों-बातो मे चर्चा की थी वहू ! मेरे तो जब गोपाल हुआ था तो मै अकेली ही थी। गृहस्थी का सारा काम यही जैसे अब है तब भी था। करने वाली मैं अकेली थी। गोपाल चूँ भी न करे और सारा काम हो जाय, यह मुश्किल था। बच्चे हँसते-खेलते है तो रोते भी हैं, मचलते भी हैं। सब सँभालना पड़ता है। प्यार और दुलार न करती तो ब्याह के पहले तक यह छोटे बच्चो जैसा "अम्मा-अम्मा" न लगा रहता। उसका रोना और मचलना लिए बैठी रहती तो घर मे झाड़ू भी न पड़ती, रसोई सीझनी तो दूर रही। गोपाल बडी तपस्या से मिला था, उसे तो मुझे आँख का काजल बनाकर रखना चाहिए था। हरदम उसी का मुँह देखती प्यार करती बैठी रहनी चाहिए था, लेकिन मैं जिसे खाली देखती उसी की गोद मे डालकर अपना काम कर लेती। गाँव भर मे इस हाथ मे उस हाथ घूमता रहता था। न कभी नजर लगी न, टोना। मैं तो यह जानती हूँ, जिसकी जितनी जतन उसकी उतनी पतन। गोद और खाट पर पडे-पड़े बच्चे कमजोर हो जाते हैं। इस धूल मिट्टी मे ही लोट-पोट कर वे मजबूत होते हैं।"

अन्नदा की उस बात को आज वहू ने इस प्रकार लौटा दिया। अन्नदा फिर कुछ न बोल सकी।

मदा ने देखा, भाभी रसोई अधूरी छोड गई, अत: वह चुप-चाप रसोईघर मे चली गई।

कैकेयी ने जब दशरथ का रुख पूरी तौर से अपने अनुकूल देखा तभी वह बोली थी, वर्ना कितनी देर तक दशरथ छटपटाते रहे, कैकई के कोप का कारण जानने को।

आदमी के मन पर शासन करने से पहले उसके मन को जीता जाता है और फिर काबू में आ जाने पर बन्दर की तरह चाहे जैसे नचाओ।

बहू इन दिनों गोपाल का रुख पूरी तरह अपने अनुकूल पाकर और भी चढ़ गई थी। गोपाल की सुख-सुविधा का सारा भार उसने अपने ऊपर ले लिया था। गोपाल एक गिलास पानी माँगता और कहीं मदा पानी लेकर जाने लगी तो वह झट से उसके हाथ से गिलास ले लेती। उस समय चाहे कोई बड़ा-बूढ़ा ही गोपाल के पास क्यों न बैठा रहता, पर वह न हिचकती। घूंघट निकाल कर पानी खुद दे आती।

गोपाल भी अपने मन में सोचता—घर में सभी भरे है, मगर एक गिलास पानी देने के लिए इसे ही सबके सामने आना पड़ता है। पत्नी *बिना कौन ध्यान दे? किसे इतनी गर्ज है?*

रसोई चाहे अन्नदा ने की हो या मंदा ने, पर गोपाल को खाना परोसने बही जाती।

एक दिन शाम को जब गोपाल खाना खाने आया तो बहू ने दोपहर वाली बात खूब नमक-मिर्च लगा कर कही।

"रोज कुछ न कुछ झंझट होता है, यह सुनते-सुनते कान पक गए। गृह-कलह जैसे जीवन का ध्येय बन गई। लोग कहते हैं भाई-भौजाइयों के रहने से झगड़ा होता है, पर यहाँ तो भाई-भौजाई से अधिक माँ बहन ही हो गई है। समझ में नहीं आता कि किस लेने-देने के लिए यह रोज की चख-चख। जब देखो तब यही बातें। जैसे और कुछ काम ही नहीं। कुछ कहूं तो दुनिया में बुराई, न कहूं तो फिर जीना मुश्किल।'—खाना खाते-

खाते गोपाल बुदबुदाता जा रहा था। और बहू-रह रह कर इस आग को और कुरेद देती थी।

"इसका एक दिन फैसला कर ही देना पड़ेगा।" खाना खाकर जाते-जाते वह कहता गया।

कुछ देर बाद उसने आवाज दी—"माँ ! जरा बात तो सुनना।"

आज गोपाल ने बहुत दिनों बाद इतनी गभीरता से माँ को बुलाया था। अन्नदा के मन मे एक प्रकार का आनन्द हुआ। अपना जवान और जिम्मेदार बेटा कोई काम करने से पहले माँ-बाप से विचार-विमर्श करे, इस सौभाग्य से किस माँ-बाप का मन आनन्द से न भर जायेगा।

अन्नदा कुछ ऐसा महसूस कर जल्दी से गोपाल के पास आई।

उसके आते ही गोपाल ने कहा—"माँ यह क्या रोज-रोज मचा रहता है ?"

आशा के विपरीत सवाल सुनकर वह कुछ हतप्रभ हुई। कुछ देर बाद विस्मय से बोली—"कैसा बेटा ! क्या मचा रहता है ?"

गोपाल के स्वर मे थोडी और तेजी आई—"यह भी मुझे बताना पडेगा कि क्या मचा रहता है ? देखो माँ, रोज-रोज का यह झंझट और लडाई ठीक नहीं। दुनिया सुनकर क्या कहती होगी ? जब भी घर में घुसो एक न एक चख-चख मची रहती है। मेरी समझ मे नहीं आता कि जब तुम एक बहू को नही सन्तुष्ट रख सकती तो फिर दो-चार होने पर क्या करती ?"

अन्नदा समझ गई गोपाल की बातें और उसका रुख।—बहू ने इसके कान खूब भरे है। इसके दिमाग मे पूरी तरह यह बात बैठ गई है कि इन घरेलू झगड़ों मे सारा कसूर मेरा तथा सदा का है। सब प्रकार से, हर विचार से मैं ही दोषी हूँ—जब ऐसा इसके दिमाग मे बैठ गया है तो सफाई भी क्या दूँ। मैंने कभी भी बहू की बात इससे नहीं कही कि सुनकर गुस्से मे आया तो बहू पर बरसेगा और फिर जो काण्ड मचेगा वह गाँव-देश मे सिर नीचा ही करेगा। यही सब सोचकर मैं साँस खींच लेती थी। मेरी इस चुप्पी से एक काण्ड तो टल गया, पर बहू ने दूसरे काण्ड की जो नींव डाल दी है उसका अन्त कितना भयकर होगा यह सोच

कर अन्नदा सिहर उठी।

बहुत देर तक तो वह इस प्रकार सोचती ही रही फिर बोली—"सन्तुष्ट करने को मैं अपने हाथ में रखती ही क्या हूँ? लेना-देना खाना-पीना सब कुछ वह करती है। मैं क्या ऐसा करती हूं जिससे वह या तू सन्तुष्ट नहीं है?"

"यह तुम जानो कि क्या तुम्हारे हाथ में है और क्या नहीं। पर ऐसा चलने को नहीं।"—माँ से आँख मिलाए बिना ही गोपाल ने कहा।

'ऐसा चलने को नहीं' गोपाल के मुँह से ऐसी बात सुनकर अन्नदा का आश्चर्य और बढ़ चला। गोपाल को हो क्या गया है? वह चाहता क्या है? इस तरह की बातों का मतलब क्या है?—यही अन्नदा नहीं समझ पा रही थी, बोली—"तो फिर जैसा चले वह कर, मैंने तेरा हाथ तो पकड़ा नहीं है।"

"और चारा भी तो नहीं है। यह रोज-रोज का झगड़ा ठीक नहीं। तुम अपना अलग बनाओ-खाओ।"—ऐसा कहते हुए गोपाल का स्वर तनिक भी नहीं लड़खड़ाया। कितनी सरलता से यह बात गोपाल कह गया, यह ध्यान में आते ही अन्नदा को लगा जैसे यह सब स्वप्न हो। गोपाल इस तरह कठोर होकर बोलेगा, ऐसी आशा उसे नहीं थी।

अत्यन्त विस्मय से उसने कहा—"क्या कह रहा है गोपाल?"

"यही माँ, कि तुम अपना खाना-पीना अलग कर लो। एक साथ न रहने पर यह रोज-रोज का बखेड़ा बन्द हो जायेगा।"

गोपाल आगे शायद कुछ और कहता, पर अन्नदा खड़ी होकर सुनने का साहस न कर सकी। उसे अपने जीवन में यह भी करना होगा और वह भी अपने पेट के जाए से, ऐसा विचार वह स्थिर होकर सह न सकी। जीवन की इस विविधता और विचित्रता पर उसे आश्चर्य हुआ। जिसको प्राप्त कर उसने अपने जीवन की सिद्धि मानी, जिसे पाकर उस का जीवन सफल हुआ, उसी से उसे अलग रहना पड़ेगा। उसे इस प्रकार असहाय होकर रहना होगा, जैसे उस अभागिनी का इस संसार में कोई अवलम्ब नहीं। जिसे सौभाग्य समझ कर एक दिन उसके सुख की सीमा नहीं थी, वही आज उसके जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ। घर में चलती

हुई कहा-सुनी का अन्त उसे इस प्रकार निरीह कर देगा, ऐसा उसने कभी नहीं सोचा था।

जब दु:ख बहुत ज्यादा हो जाता है, तो न तो आंसू बहते हैं और न ही कोई बात निकलती है। आदमी ठगा-ठगा सा एक गहरे सोच में डूब जाता है। दु:ख मुखर न होकर अगर अन्दर-ही-अन्दर समा जाय तो वह जीवन की एक व्याधि बन जाता है। अन्दर-ही-अन्दर वह शरीर को घुन की तरह चाट जाता है।

अन्नदा की ऐसी ही गति हो गई। जो समय सामने आ गया उसे उसी तरह ग्रहण करने के सिवा अन्य चारा भी तो नहीं बचा रहा। अन्नदा ने एक प्रकार से छाती पर पत्थर रखकर शाम को घर के एक कोने में अलग चूल्हा फूंका। पति की मृत्यु पर भी उसे ऐसा दारुण कष्ट न हुआ था जैसा आज अपने ही तन से फैले हुए उस भरे-पूरे घर परिवार में अलग से चूल्हा जलाते हुए हुआ। उसे लगा, जीवन का जीवित नर्क जिसे कहते हैं वह यही तो है। क्या इसके अलावा कुछ और होगा इससे बढ़कर नारकीय दुख उसकी कल्पना में न आया।

इस दारुण दु:ख ने अनजाने ही उसके जीवन रस को जो चूसना शुरू किया तो एक दिन चेत आने पर सब कुछ हाथ से जा चुका था।

एक सुखदेई चाची को छोड़कर जिस किसी ने अन्नदा के अलग होने की बात सुनी, वही आश्चर्य-चकित रह गया।

बिहारी सुनकर दौड़ा-दौड़ा आया। अन्नदा आग सुलगाने जा रही थी। घबराहट के स्वर में वह बोला..."चाची यह क्या ?"

अन्नदा को उस मौके पर भी बिहारी की बात सुनकर हँसी आए बिना न रही। उसी मुद्रा में जवाब दिया—"कुछ नहीं रे, पचाग्नि तप

रही हूँ। यह कुछ अनहोनी तो नही है बिहारी। घर-घर मे यही हो रहा है, फिर आश्चर्य क्यों ?"

"नही चाची, यह न होगा। घर-घर मे यह होता है, पर इसका होना अच्छा नही कहा जा सकता। अपने ही घर में तुम इस तरह रहो, यह किसी विचार मे ठीक नही।"

"ठीक और गलत कुछ नही होता बिहारी! यह तो सब मौके और वक्त की बात है। जो बात आज के लिए ठीक है वही कल गलत हो सकती है। जो कल ठीक थी, आज वह गलत मानी जा रही है। जिसे तुम देखकर गलत कह रहे हो, इस गलती के होने मे इससे अधिक अच्छाई कही हुई है, इसलिए उस अच्छाई को देखते हुए इस गलती को भी ठीक ही मानना चाहिए।"—बात खतम करते-करते अन्नदा के चूल्हे की आँच धधक गई।

बिहारी अन्नदा की बात सुनकर एकदम मुँह ही देखता रह गया। कुछ देर तक वैसे ही बैठा रहा और फिर बिना कुछ बोले चला गया।

उधर बहू की गृहस्थी का एक नया ही दौर शुरू हुआ। सास के अलग होने पर दिखावे का भी खेद उसने प्रकट नहीं किया। नया मुल्ला ज्यादा 'अल्ला-अल्ला' करता है। किसी काम की शुरुआत में कुछ और ही उमग होती है। इस उमंग के आवेश में आदमी को वर्तमान के सिवा कुछ अन्य दिखाई ही नही देता। धीरे-धीरे जब विभीषिकाएँ आकर खडी हो जाती है, तो स्थिति यह होती है कि, 'कुतः गच्छामि, किं करोमि।'

बहू नई-नई मालकिन हुई थी, सर्व-सत्ता-सम्पन्न गणतंत्र-सी। वह अनागत की सारी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर चल रही थी। गृहस्थी मे कैसे चलना चाहिए, कैसे खाना-पहनना चाहिए ? इसकी चिन्ता उसने नही की। क्षणिक बाहिरी सुख के आगे जीवन के स्थायी सुख की परवाह उसे नही रही। गृहस्थ-धर्म किसे कहते है ? यह जानने का उसे अवकाश नही था।

उधर गोपाल के ऊपर भी कोई नियन्त्रण न रहा। अन्नदा की जिस प्रेरक शक्ति से वह नियन्त्रित था, उससे मुक्त हो गया था। जवानी का जीवन-स्रोत जिस उन्मुक्त प्रवाह से स्वच्छन्द होकर बहता है, उसकी एक

भी धारा गोपाल से छूटी न रही। मस्ती और मौज यही उसके जीवन की गति हो गई।

पहले माँ भर-नींद सोने नहीं देती थी। सवेरा हुआ नहीं कि 'गोपाल, गोपाल, कह कर करवट बदलना मुश्किल कर देती थी। उठते ही दिन भर के काम की सूची जो पढनी शुरू करती तो तबियत भन्ना उठती। पर अब, अब मजे हैं। जब तक मरजी तब तक सोओ। कोई बोलने वाला नहीं। जब मरजी तब काम करो, कोई पूछने वाला नहीं। बस, इसी मौज मे गोपाल मतवाला था।

आदमी जब जिम्मेदारियो से मुँह मोड कर चलता है तो आँखो के सामने होती हुई विनाश-लीला उसे दिखाई नही देती।

अन्नदा का नियन्त्रण सब पर से हट जाने पर इधर वह अपनी मनमानी करने को स्वतन्त्र हुई, उधर गोपाल मस्ती मे डूब गया। खेत बोने का समय आया तो उसे सुधि नही। खेती पानी के बिना सूख रही है, यह देखने का उसे अवकाश नही। जिन खेतो से कभी पचासो बोझ डाँठ निकलता था, उसमे मे अब ददरी कट कर आने लगी। एक दिन था कि उसके खेतो में खडी ईख को देखकर लोग डाह करते थे, अब उसी खेत मे सूखे सरपत-सी खडी ईख अनाथ की जायदाद-सी लगती है।

जब खेत की हालत यह हो गई तो खलिहान कहाँ से भरता? अन्न की पैदावार मारी गई, पर बच्चों की पैदावार खूब बढ़ी। जब गरीबी आती है तो सतान भी खूब बढती है। पहले मदा और अन्नदा को लेकर झगडा होता था, अब गोपाल और वह से रोज कुछ न कुछ लेकर चख-चख हो जाती थी। एक दिन वह था कि गोपाल ने तनिक-सा ठुनक दिया तो रुठ के मायके चली गई। अब आए दिन गुस्से मे दो-चार लग जाती तो केवल आँसू बहा कर रह जाती है। अब अक्सर गोपाल के सामने बिना घी की दाल आती। घर मे जो कुछ मोटा अनाज होता वही पकाकर खाना सामने आता, तो गोपाल कुड़मुड़ाता। वह भी जवाब देने से न चूकती —जो कमा कर लाए हो वही तो खिलाऊँगी। जब रहा तो भर-भर कर खिलाया, अब नही तो कहाँ से लाऊँ?—झगड़ा होने के लिए इतना ही काफी होता।

एक दिन जिन बच्चों के तनिक से रोने पर ही वह सारे घर मे खलबली मचा देती थी, वही बच्चे अब एक तरफ लड़ते रहते है, चीखते रहते है, मार-पीट करते रहते है, पर बहू को उधर ध्यान देने की फुरसत ही नही रहती। कोई दूसरे की शिकायत लेकर आता तो बहू की झुंझलाहट का वही बेचारा शिकार होकर दो चार चाटे खा कर चीखता हुआ लौट जाता। मारने के बाद कहती—"मुओ, आपस मे ही लडो-मरो। किसकी-किसकी सुनूं ? मेरी जान न खाओ।"

'अपने साजन को लै के अलग रहबै'—के जिस सद्धर्म को अपना कर बहू ने सुख चैन का स्वप्न देखा था, वह थोडे ही दिनो मे झुंझलाहट तथा झँझोर मे एक जजाल बनकर रह गया।

अन्नदा के अलग हो जाने पर सुखदेई चाची ने बहू के साथ गहरा अपनापा जोड़ा। जो सुखदेई अन्नदा की कभी ड्योढी नही लाँघी थी, वही अब जब देखो बहू के पास डेरा जमाए रहती थी। दुश्मन का दुश्मन अपना दोस्त होता है, इसी सिद्धान्त ने सुखदेई को बहू की ओर आकर्षित किया। कुछ घटने-बढने पर लेन-देन का सम्बन्ध भी सुखदेई से ही जुडा। सुखदेई के घर मे न तो गाय-भैंस लगती थी और न ही खेती जोरदार थी, पर पडिताई की पुटकी से उस घर मे हमेशा कई भैंसों का घी पड़ा रहता था। जजमान ज्वार-बाजरा चाहे जो खाये, मगर पण्डित जी के घर गेहूँ का ही सीधा भेजना पड़ता था। पडित जी के घर नरम चारे की भी कमी नही थी।

जिस घर से कभी मौके, बेमौके दूसरे की इज्जत रहती थी उसी घर को अपनी इज्जत के लिए अब मौके पर दूसरे पर आश्रित होना पड़ा। —यह देखकर अन्नदा की छाती फट-सी चलती। यही सब दुख मिलकर उसे अन्दर ही अन्दर खाए जा रहे थे।

खेती-बारी तथा घर की चिन्ताओं से अपने को मुक्त कर गोपाल ने एक नई जिम्मेदारी सँभाल ली।

गाँव में चलने वाली कूटनीति और दलबन्दी का वह एक खास अंग बन गया। जुरमाना देने के बाद अपनी प्रतिष्ठा की हीनता जो उसने देखी थी, लोगों की निगाहों में जो वह 'कुछ नहीं' होकर रह गया था, सम्भवतः उसी पूर्ति के लिए, अस्तित्व को फिर से उसी स्तर पर लाने के लिए वह गृहस्थी की जिम्मेदारियों को भुलाकर, कूटनीति में उलझ गया।

एक दिन हरिया ने गोपाल की बाग से दाल में डालने के लिए चार-छ कच्चे आम तोड लिए। वैसे यह कोई बडी बात नहीं थी। जिनके लिए में ये सहज-सुलभ वस्तुएँ दुर्लभ हैं, उनका काम इसी प्रकार से चलता है। इसके लिए उन्हें न कोई कभी रोकता है, न कुछ कहता है। पर गोपाल ने इसी बात को लेकर पचायत अदालत में दावा कर दिया। केवल डाटने से हाथ-पैर जोड़ने वाले हरिया पर गोपाल का दावा करना सबको आश्चर्य-जनक लगा।

सरपच ने तो कहा भी—"गोपाल, यह क्या कर रहे हो? क्या हरिया ने तुमसे मुँहजोरी की या मना करने पर ही नहीं माना? अपने सहारे जीने वाले लोगों पर दावा करने तुम्हें शोभा नहीं देता। जो सुनेगा वही तुम्हें बुरा कहेगा। पुश्त-दर-पुश्त ने ये लोग इसी में रहते आए है, गुजर करते आए हैं, किसी ने इन सबका हाथ नहीं पकडा। तुम्हारी मजूरी-धनूरी करते हैं तो गुजर भी तुम्हारे में ही होगा।"

गोपाल को इतनी समझ नहीं रही हो, सो बात नहीं। सरपच की बात उसके मन में न चढी। उसने दावा कर ही दिया और साथ ही सर-पच की बात का जवाब भी दिया—"सरपच, अब न वह लोग हैं और न वह दुनिया। जब ये लोग हमारे में गुजर करते थे तब की दुनिया और

थी, और अब जब तनिक-सा डाटने पर कानून की दफाये ढूंढकर हम पर दावा करते है, तब दुनिया और है। मान लो, मैं उसे थोड़ा धमका देता और वह आकर पंचायत मे दावा ठोक देता तो मैं फिर जुरमाना भरता ? इससे अच्छा यही समझा कि चुप रह कर मैं ही दावा कर दूं। क्योंकि अब तो इस ग्राम पचायत मे यह रास्ता खुल ही गया है, इसलिए अपना कुछ नुकसान होने पर किसी को कुछ मुह से कहा-सुना जाय इससे अच्छा है अपनी इस पचायत मे नालिश कर दी जाय। दूध पानी अलग हो जायेगा।

किस बात को लक्ष्य करके गोपाल ने यह बात कही, सरपच को यह समझने देर न लगी। खिसियाना-सा होकर बोला—"भइया, तुम तो गडे मुर्दे उखाडने लगे। उसमे कुछ दूसरी पेंच थी। तुम तो सब समझते हो उसमे इसका मेल मत बैठाओ।"

पर गोपाल समझ कर भी नहीं समझा। बोला "ठीक है चलने दो। कम से कम इस बात का रिकार्ड तो कायम होगा कि अपनी ग्राम पचायत ने गाँव के कितने झगडे यही निबटा दिए।"

हरिया के ऊपर गोपाल के दावे की खबर गाँव मे जगल की आग-सी फैली। जिसने सुना उसी ने आश्चर्य माना।

अन्नदा ने केवल इतना ही कहा—"गोपाल, क्या तू यही अब करेगा ? न जाने कितनो की भाग्य से इस बन्जर धरती का कलेजा फटा था और तब जाकर तेरे बाप की लगाई यह बाग तैयार हुई। उन्होने कभी किसी को मना नहीं किया। तूने खुद, जो भी दो आम उठाने के लिए झुका उसकी झोली मे चार आम डाल दिए। आज तू ही दो-चार आमों के लिए उस गरीब बेचारे पर दावा कर आया। जिसके नही है, दुनिया उसे अपने हाथो से देकर पुण्य लेती है, और आज तू उन्हीं लोगो के मुह से छीन रहा है जो हारे-गाढ़े काज-प्रयोजन अपने काम आते है ?"

गोपाल ने कुछ सोच समझ कर ही यह काम किया था, अतः ऐसी बातों का जबाव भी उसके पास था, तुरन्त बोला—"मुझ पर जो तलवार चली थी, अब मैं उसी की धार देख रहा हूँ कि कितने पानी में बुझी थी।"

"तो पलटू का बदला अब तू हरिया से ले रहा है ?"—अन्नदा ने

आश्चर्य से पूछा।

"यह किसी का बदला किसी ने नहीं है माँ। जिस दिन घिसियावन तुमसे बातें कर रहा था उस दिन मैं भी उसकी बातें यहीं बैठ कर सुन रहा था। वह कहता था न, कि दुनिया उलट गई है। मुझे भी वैसा लग रहा है। पलटू ने मुझ पर झूठा केस बना कर दावा कर दिया, मैंने बिना सफाई दिये जुरमाना भर दिया। लोग पुरानी बातें छोड़ते जा रहे हैं। पुरानी नीति और रीति छोड़ते जा रहे हैं। इस नई आँधी में पुरानी मर्यादायें और आदर्श मिट रहे हैं। लोग कहते हैं कि बाप का ऋण बेटा उतार देता है। माँ का ऋण नहीं उतार सकता, पर मैंने तुम्हारा भी—माँ का— ऋण उतार दिया। कितना कष्ट सह कर तुमने मुझे पाला। मुझे सुखी रखने को तुमने हर दुख को सुख समझ कर झेला। मुझे अपने परिवार का दीपक समझा, बुढ़ापे का सहारा समझा। अकेले मुझमें ही माँ, तू विश्व की सम्पदा पाकर निहाल हो गई। पर, मैंने तेरे साथ क्या किया? मेरे जीते जी तू किस तरह असहाय-सी जिन्दगी बिता रही है? आज जब वक्त आया कि मैं तेरी सेवा करता, तुझे अपने कर्मों से निहाल करता, तो मैंने धक्का देकर तुझे अलग कर दिया।

"तूने अपनी जिन्दगी में मुझे लेकर न जाने आशा के कितने दीप सँजोये रहे होंगे। जब तू उन्हें धीरे-धीरे जला कर स्वयं आलोकित हो रही थी, तो मैंने सब को एक ही फूंक से बुझा दिया और तुझे ऐसे गहरे अंधकार में ढकेल दिया जहाँ तुझे अपनी बाकी जिन्दगी बिताने के लिए राह नहीं मिल रही है। चिन्ताओं के कीटाणु तेरे अन्दर घुस गए हैं, वे अन्दर ही अन्दर तुझे कितना खा गए हैं, क्या मैं यह देख नहीं रहा हूँ? देख ही नहीं रहा हूँ, समझ भी रहा हूँ। पर तेरी तरह मैं भी असहाय हूँ। जो अर्द्धांगिनी होकर, जीवन-संगिनी बन कर आई है, उसका संग निबाहने के लिए मैं तेरे प्रति ईश्वर को जवाब देने लायक नहीं रह गया। ऐसा न करने पर मेरी यह जिन्दगी नर्क हो जाती। बच्चे लुच्चे और लफंगे हो जाते। तुझे सुखी कर मैं जीवन का नर्क भोगने को तैयार था, पर तू भी कहाँ सुखी थी? उपेक्षिता की उस जिन्दगी में मैंने इसी में तेरी भलाई देखी। मैंने तुझे अलग कर दिया। मेरे मन को सुख मिला, पर तू अपने

को इस जिन्दगी मे नहीं ढाल सकी। इसे तूने सुख नही माना। दुनिया उलट गयी है, तभी तो यह सब कुछ हो रहा है। बेटा माँ से अलग हो रहा है, पत्नी पति को इशारे पर नचाती है। मैं अपने मन की अतृप्ति को, मन के असन्तोष को, अपनी ही आग से जला रहा हू। तुम जाओ, मैं जो कुछ कर रहा हू करने दो।"

गोपाल की बातें सुनकर अन्नदा की छाती भर आई। उसकी बातों से ही वह निहाल हो गई। आँखों मे भरभरा कर आँसू छलक आए। उस का मन हुआ कि दौड़ कर इस पागल बेटे को छाती से चिपका ले, उसकी आग को अपने मातृत्व के स्नेह से शीतल कर दे, पर वैसा कर न सकी। आचल की कोर से आसू पोंछती हुई वह घर मे चली गई।

शाम को बिहारी आया। हरिया ने गोपाल पर दावा कर दिया, यह सुनकर नही आया, बल्कि और भी बहुत सारी बातें सुनकर आया था।

उधर हरिया को जब पता लगा कि गोपाल ने उसके ऊपर दावा कर दिया है, तो वह बेचारा रो जैसा पडा। कहने लगा—"इस गाव मे अब जो न हो जाय थोड़ा।"

आए हुए सकट को टालना होगा, यह सोच कर वह भागा-भागा पंडित रामजियावन के पास गया। पंचायत मे उनका प्रभाव था, उन से कुछ सहारा मिलेगा, यही सोचकर वह वहाँ पहुचते ही बोला। "दोहाई पडित की! एस अन्धेर यह गाँव मे कबहू न भवा। दाल मैं डारै खातिर दुई आम गोपाल की केडवारी से का लै लीन अपनी गटई मैं फासी डाइ लीन। ऐसेन रहा तो हाथे से छोरि लेतेन। बोलित तौ दुइ चबरा मारि लेतेन, मुला कहेन कुछ न, चला गएन पचायन मे दावा कइ देहेन। अब कइसेन ठेकान लागै यह गाँव मँ?"

पण्डित रामजियावन हरिया की बात सुनकर बड़े जोर हँसे और बोले—"जो है सो मैं सब समझ रहा हूँ। खिसियानी बिल्ली खभा नोचे। बदला लेने का दाव चलाया है। अच्छी बात है, जब तक तो पडित राम-जियावन है तब तक बेटा को चैन न लेने दूंगा।"—यह कह कर उन्होने अपनी मूँछो को थोड़ा ऐंठा—"हरिया! चिन्ता किसी बात की नाय। तू जा घर बैठ। मै जो है सो सब निपट लूंगा।" और फिर चुटकी बजाकर

बोले—"केस ऐसे खारिज करा दूँगा कि बेटा नमक-नीबू चाटते चले आयेंगे। जिस गुमान मे वह है, वह जो है सो मैं समझ रहा हूं।" फिर चौकन्ने होकर इधर-उधर झाका, जब कोई न दीखा तो वडे धीरे से गम्भीर आवाज मे बोले—"देख एक पत्ते का इन्तजाम करना होगा। तेरी डिग्री हो जायेगी और गोपाल की शेखी किरकिरी।"

पडित का 'पत्ता' हरिया समझता था। 'पत्ते' की बात सुनते ही चिल्लाया—"पडित! हिया जहर खाइ क पइसा नाहि अहै। लरिकन उपवास करत अहै। तन प केहू के बीता भर कपड़ा नाहीं अहै। कवनी गोजई प कर्जा लइ के मुकदमा लडी। चाही जवन होय पडित, फांसी जेहल सब भोग लेब। मुला केकरे तरे गटई दबाइ के करजा लेई मुकदमा लडै बरै। जब गोपाल भइया क कुछ नाही सुझान औ दाबा कइ देहेन तौ हम इहै कहब कि हमार दैव रिमियान अहै।"

पडित रामजियावन दांत पीस कर बोले—"ससुरे, धीरे से नही बोला जाता। सुना किस बाप को रहा है जोर-जोर से बोल कर? तेरे पास नहीं है, तो मै दे दूगा। जब तेरे हो तो दे देना। नही तो छोड, मत ही देना।"

हरिया ने कान पकड़ा और कहा—"न पडित! तोहरे करजा से तौ राम बचावैं। तोहरे करजा क तौ बियाजऊ नाही पटत, मूर क के कहै। जे जे तोहसी करजा लेहेन केउ आज तक उरिन नाही भयेन। दस क सौ दै चुका होये मुला तोहार मूल दस खडी अहै।"

पडित रामजियावन ऐसी बात का बुरा नही मानते थे। क्योंकि उनके बारे मे सब का यही मत था। हरिया की बात का भी उन्होंने बुरा नही माना। जब देखा कि हत्थे नही चढता तो केवल इतना ही कहा—"फिर देख ले, तेरी मरजी। इतनी अकड है तो तमाशा भी देखना।"

हरिया उठ कर चला आया। लम्बी दौड़ मारी। सीधे गया सरपच के घर। सरपंच चिलम मे तम्बाकू चढाए मजे से हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उड़ते हुए धुंए के साथ ही वह भी अपने विचारो मे खोया हुआ उड़ रहा था। हरिया ने पहुँचते ही जो राम-राम की तो सरपंच का ध्यान टूटा। हरिया ने जब अपनी विपद सुनाई तो उसने जवाब दिया—"देखो

भाई, यहां घर में तो जैसे तुम वैसे मैं। यहां दावा की बात हम क्या करें। दावा तो गोपाल ने किया ही है, देखो अब क्या होता है? कैसी गवाही-साखी पड़ती है। जैसा पंचों की निगाह में जँचेगा, वही होगा। मैं क्या कर सकता हूं। पंडित से राय-सलाह लो, वे शायद कुछ सही राय दें।"

पंडित का नाम लेते ही हरिया की आशा टूट गई। समझ गया कि अब यहां कुछ न होगा। हताश स्वर में बोला—"उही से तो आय रहे है। पंडित तो कहेन कि 'एक पत्ता' निकारा तो मुकदमा खारिज। अब बतावा सरपंच, दस रुपिया होत नौ का लरिकन उपवास करतेन। हम गवाही साखी हेरि के मुकदमा लड़ि के बरजोरी न करब। जवन बदा होए तबन होए। क सरपंच! जुरमाना होये तो का दस रुपिया में ज्यादा होये?" घीसू बोला···"मैं क्या बताऊँ, नहीं भी हो सकता है, ज्यादा भी हो सकता है। यह तो पंचों की निगाह है।"

ज्यादा भी हो सकता है—यही बात हरिया के दिल में बैठ गई। ···गरीबों का मुंह कौन देखता है। अभी कहीं से ले देकर इस बला से छुटकारा पाया जा सकता है। बाद में अदालत ने कहीं ज्यादा ठोंक दिया तो कौन-सी गाय-भैंस बेंचकर जमा करूँगा? यही सोच कर हरिया बोला—"अच्छा सरपंच, चलत अही। करब कुछ ढंग।"—यह कह कर उठ खड़ा हुआ।

सरपंच ने कुछ न कहा। हरिया चला गया।

जिसके हाथ में सब कुछ था, जब वही टका-सा जवाब दे बैठा तो हार कर आया वह बिहारी के पास, दस रुपया करजा लेने को।

हरिया की सारी बात सुनकर बिहारी ने उसे तसल्ली देते हुए कहा कि वह घबराए नहीं। पहले गोपाल से उसे पता कर लेने दे कि उसने ऐसा क्यों किया। कुछ न बनने पर उसे दस रुपये मिल जायेंगे।

हरिया की जान में जान आई। दुनिया भर की दुआयें देता हुआ वह घर चला गया।

उसी वक्त बिहारी गोपाल के यहाँ यही सब सुनाने गया। उसे गोपाल पर गुस्सा आ रहा था कि उसने बेचारे हरिया को इस परेशानी में क्यों

डाल दिया ? इस सम्बन्ध में गोपाल को उसने फटकारा भी।'

विहारी की क्रोध भरी बातें और हरिया की भाग-दौड़ सुनकर गोपाल को हँसी आ गई। कुछ देर बाद हँसी रोक कर बोला –"बड़े भइया ! नाराज मत होओ। देखते चलो। मैं जानता था कि यही सब होगा। बाघ के मुँह में जब आदमी का खून लग जाता है तो वह अपनी सीमा छोड़ देता है। जगल को छोड़कर गाव में घुस आता है। वह आदमी के खून का का दीवाना हो जाता है। यह दीवानगी उसे अन्धा कर देती है और एक दिन यही उसकी मौत का कारण होती है। हरिया का तुमने दस रुपया देने को कहा है न ? वह रुपया मुझे दे दो। मैं कल शाम तक तुम्हें लौटा दूँगा। तुम हरिया को दे देना कि वह चुपचाप सरपच को दे दे।"

विहारी आश्चर्य से गोपाल की बातें सुनता रहा। दस रुपया देने-लेने की बात उसे समझ में न आई। उसने कहा—"गोपाल ! तुम्हारी बात मैं समझा नहीं। तुम करना क्या चाहते हो ? साफ-साफ बताओ।"

गोपाल विहारी का आदर अपने सगे बड़े भाई जैसा करता था। मन की कोई भी बात उससे कभी छिपाई नहीं। यह रहस्य भी उसने बिना किसी झिझक-सकोच के उससे प्रगट कर दिया।

विहारी गोपाल की बात सुनकर सकते में आ गया। कुछ देर तक बोल ही न सका।

विहारी की ऐसी मुद्रा देखकर गोपाल बोला—"बड़े भइया ! मेरा मुँह क्या देख रहे हो ! लाओ दस रुपया दो। इस दस रुपये का एक दांव मेरी ओर से।"

विहारी को थोड़ी हसी आई और बोला—"रुपये के बारे में नहीं सोच रहा हू गोपाल ! कुछ और ही सोच रहा हू। तुम इतना बड़ा खतरा मोल लोगे, ऐसा मैं नहीं सोच पा रहा हू। तुम्हारी बात सुनकर मैं भी सोच रहा हू कि यह ठीक है। लो, यह दस रुपये !"—यह कह कर विहारी ने टेंट से दस रुपये का एक नोट निकाला और गोपाल को दे दिया।

गोपाल ने उस नोट को माथे में लगाया और कहा—"बड़े भइया

मदद करना।"

दूसरे दिन गोपाल सबेरे ही कही चला गया और दोपहर ढलने के बाद वापस लौटा। उधर वह घर मे बडबडा रही थी कि सवेरे से न जाने कहा निकले है। नहाने-धोने, खाने-पीने की सुधि ही नहीं। आज-कल न जाने यह कौन-सा धंधा अपना लिया है कि इसके पीछे खेती-बारी चौपट हो रही है।

गोपाल वापस लौटकर भी घर न रुका। वह रोकती रही कि अब तो नहाओ-खाओ, मगर गोपाल पर कुछ और ही नशा था। वह सीधे बिहारी के पास पहुचा और बोला—"बड़े भइया, लो यह अपना नोट। ले जाओ, इसे हरिया को दे दो और कह देना कि शाम को कुछ अधेरा हुए जाकर सरपच को दे आये। समझा भी देना कि ऐसी चीजे जरा चोरी चुपके दी जाती है। दे सरपच को ही। चाचा रामजियावन की बैठक शाम को वही लगती है, कही उनको न दे दे। क्योकि काम तो सरपंच ने ही करना है, अत. उसके हाथ मे देने से भलाई लगी।"—जाते-जाते भी कहता गया —"बेवकूफ है, जरा समझा देना। किसी को खबर न लगने पाए।"

गोपाल चला गया।

बिहारी ने हरिया को बुला कर दस रुपये का नोट देते हुए कहा—"हरिया, ले। तू दे-दिलाकर अपना पिण्ड छुडा। गोपाल से मैं समझूगा। गोपाल ने तुझ पर दावा किया है, अब मैं समझता हू, मुझ पर किया है। इस तरह से तुम सब पर दावा-धक्का होता रहा तो कैसे चलेगा। यह रुपया मै तुझे अपनी ओर से दे रहा हूं। काम तो सरपच के हाथ में है। सीधे उन्हे ही देना। किसी और को मत दे देना, समझे! जाओ, चुपचाप देकर चले आना। किसी से इसकी चर्चा मत करना।"

हरिया बिहारी की बातें सुनकर गद्‌गद् हो गया। उसके पैरों पर गिर कर बोला—"भइया! इही जून तो पडित का बइठक बहा जमत है। पंडित पूंछ जैसा सरपच के साथे लाग होइहैं। उनका अकेल कहा देइ जाव?"

बिहारी उसकी दुविधा समझ गया, बोला—"पडित का कोई डर

नहीं। पंडित ही ने यह रुपया देने की राय बताई थी। उनके रहने की कोई बात नहीं। उनके अलावा और कोई न रहे। देना सरपच को ही, पंडित के हाथ लगा तो काम न बनेगा।"

हरिया असीसता हुआ चला गया।

दिन छिपा, अंधेरा बढ़ने लगा। जाड़े का मौसम था। घरों के सामने अलाव जल गए थे। कुछ लोग दिशा-मैदान को निकले थे। कुछ खेत सींच कर लौट रहे थे।

ऐसी ही वेला में हरिया घर से निकला। सरपच के घर पहुंचते-पहुंचते अँधेरा कुछ बढ चला था। अलाव जल रहा था। घिसियावन हुक्का हाथ में लिए उसकी छोटी नलकी मुँह में दाबे गुड़-गुड़ कर रहा था। पंडित रामजियावन मचिया पर बैठे अलाव की आंच कुरेदते जाते थे और थोड़ी-थोड़ी देर में उस पर कुछ सूखा फूस रख देते थे, ताकि लपट उठती रहे। पुरवट से लौटी गीली मोट वहीं लाठी के हुरे में उलटी टँगी थी, ताकि धुआ खाकर सूख जाय। पंडित जी कुछ बातें करते जा रहे थे और रह-रह कर जोर से हँस भी देते थे। घिसियावन केवल 'हूं हूं' करके रह जाता था।

हरिया आकर चुपचाप अलाव के पास बैठ गया। पंडित राम जियावन किसी को अचानक देखकर चौंके, बोले—"कौन हरिया! कैसे आया?"

अपने में ही डूबा हरिया बोला—"कइसे बताई पण्डित, कइसे आवा। तुम तौ सब जानत हौ। उहै गोपाल का दावा···।"

सरपंच के हुक्के की गुडगुड़ाहट बढ गई। पंडित हँसकर बोले··· "सग्ऊ, अब आए सही रास्ते। जब मैं कह रहा था तो दुनिया भर की बातें बघार रहा था।"

हरिया कुछ कहे कि इसके पहले अनजाना होकर घिसियावन बोला "कैसी बात पंडित।" जैसे उसे कुछ मालूम ही नहीं।

पंडित जी ने बड़ी लापरवाही से जवाब दिया—"अरे कुछ नहीं। गोपाल ने इसके ऊपर जो पंचायत में दावा कर दिया है, उसी के बारे में कह रहा था। जब मेरे पास आया और मैंने काम की बात बताई, तो

मुझे समझाने लगा। मैं भी चुप रहा। सोचा, 'कितना चिड़िया उड़े आकाश चारा है धरती के पास,' फिर हरिया को सम्बोधित कर कुछ गंभीर स्वर में बोले—"अब क्या इरादा है ! तू मैं या···"

हरिया बोला—'लं काह न आइत। नोहसी लेईत तो यह जिनगी पटवं न करत। यतउ मे माग-जाच के लं आइ अही।" यह कह कर उसने टेंट से दस का नोट निकाला और सरपच की ओर बढ़ा कर बोला—"ल्या सरपच ! अब चाही तारा चाही बोरा। हम तो अब तोहरे भरोसे अही।"

घिसियावन ने हुक्के की नली मुंह से निकाली और थोड़ा पीछे सरकते हुए धीरे से बोला—"हा ! हा !! मुझे क्यों दे रहे हो भाई ! पंडित ने तुम से कहा है तो पंडित को दो, मुझ से क्या मतलब !"

हरिया ने जिद की—"न सरपच ! पंडित क काहे का देई। इ तो तुहिन ल्या। हम तो ई जानित है कि तु चहबा तो हमार उद्धार होई।"

घिसियावन टाल-मटोल करता ही जा रहा था कि पंडित ने कहा··· "ले लो सरपच तुम्ही ले लो। इसके मन को धीरज हो जाए।"

मन के सकोच पर पडित की बात ने विजय पाई। हरिया ने सरपच की मुट्ठी मे नोट दबा ही तो दिया। घीसू ने अलाव के उजाले में नोट को टेंट के हवाले किया।

अभी नोट टेंट मे सँभाल भी न पाया था कि एक आदमी चीते की तेजी-सा झपट कर अलाव कर के पास पहुँचा और घिसियावन की कलाई पकड़ कर बोला—"पहिचाना मुझे ?" ऐसा कह कर उसने टार्च की रोशनी अपने मुंह पर डाली।

सब मुंह बाए सकते मे आए देख रहे थे। बडी देर मे मुंह से निकला —"नही साहब !"

"पहिचान जाओगे।" कह कर उसने जोर की सीटी बजाई। सीटी बजते ही चारो ओर से 'भर-भरा' कर आती हुई पुलिस ने घेर लिया। घिसियावन को काटो तो खून नही। वह हिल-डुल भी न सका। हरिया खडा-खड़ा थर-थर कांप रहा था। पंडित रामजियावन की तुरत बुद्धि चेती। सीटी बजते ही वे अपना सोंटा लिए भागे, पर चारों ओर से धड़-

घड़ाती हुई पुलिस को आते देखकर उन्हें होश ही न रहा कि कहां जायें, किधर को भागें? उस बदहवासी मे भगाते हुए जब सामने से पुलिस जवान की डाट पडी तो डर के मारे पास ही गड़ही मे भहरा पड़े।

जाडे का मौसम, ठिठुरती ठडी रात, पानी से भरी वह गन्दी गडही जिसमें उस पुरवे का बरसाती पानी जमा था और जो अब काई से पटी पड़ी थी, उसी में पडित रामजियावन दुर्योधन की भांति अपने को सुरक्षित समझे खडे थे। डर के मारे साँस छाती मे नही समा रही थी। गर्मी मे व्याकुल हुए भैंसे की तरह वे हाँफ रह थे। किम गन्दी गड़ही मे, किम मौसम मे, वे छाती तक पानी मे खडे थे, इसका ज्ञान प्राणों के भय के सामने न रहा।

उधर यह शोर-गुल सुन कर गाँव के कुत्ते भौंक-भौंक कर एक हगामा मचाए थे। गड़ही के किनारे खडे पुलिस की जोरदार आवाज तथा पानी मे खड़े पडित जी को देख कर कुत्तों ने समझा शायद यही चोर है और वे सब किनारे खड़े पडित जी की ओर मुँह किए भौंक रहे थे, जैसे सारे गाँव को बता देना चाहते थे कि हमने चोर पकड लिया है।

उधर भ्रष्टाचार अधिकारी ने घिसियावन के टेंट से नोट निकाल कर नोट सहित उसे पुलिस के हवाले किया। हरिया का नाम पता लिख कर उसे छुट्टी दी और वहाँ आया जहाँ पडित जी कुत्तों से अपने वहाँ होने का प्रचार करवा रहे थे। पडित जी इस पुण्य कार्य की एक कड़ी थे, इसलिए भय से भागे थे। पुलिस ने पडित जी को पानी से निकलने को मजबूर किया। पडित जी बाहर निकले, पर हवा मे केले के पत्ते की तरह कांप रहे थे। काई और कीचड़ मे सने हुए। ठीक से बोल नहीं निकल पाती थी हड़बड़ा कर बोले—

"मैंने समझा साहब डाकू है।"

अधिकारी ठठा कर हँसा और बोला—"ठीक समझा। साहब डाकू हैं। हम डाकू हैं, यही न?"

पडित गिडगिडाए—"राम राम! हुजूर आप तो दूसरा ही अर्थ लगा रहे हैं।"

"वक्त ही ऐसा है। तुम जैसे साहूकारों के लिए हम डाकू ही है।

पहले घर चल कर हुलिया बदलो । कही निमोनियाँ हो गया तो और आफत ।"

पंडित जी उस वक्त मर जाना ही ज्यादा अच्छा समझते थे, पर मौत चाहने से ही तो नही आ जाती ।

कागजी कारवाई पूरी करके पुलिस घिसिआवन को गिरफ्तार करके ले गई । सारे गाँव मे यह खबर आँधी-सी फैली । जिसने सुना वही हैरान हो गया । कुछ लोगों ने खेद प्रकट किया तो हँसने वाले भी कम नही रहे । हँसी आई अधिकतर पडित्त जी की गति सुनकर । कुछ लोग ताना मारने से भी नही चूके, कहा — अब आटा-दाल का भाव मालूम होगा । सुखदेई की दसों अगुलियाँ चटकी, जैसे किस का नाश-निरवश उसकी अगुलियो मे ही समाया था ।

इस सबके बावजूद एक अजीव प्रकार का सन्नाटा था । कौतूहल भी था । सभी यह जानना चाहते थे कि यह सब कैसे हुआ ? किसने यह काण्ड करवाया ? हरिया ऐसा वुद्धू जो वोलते भी काँपता है, उसकी कहां हिम्मत कि ऐसा करता । गोपाल ने उस पर दावा किया है, वह ऐसा क्यों करने लगा । विहारी देवता आदमी, न उसे किसी का लेना, न देना । घिसियावन के जितने भी दुश्मन थे सब पर नजर डाली गई, पर ऐसा साहस कोई कर दे, ऐसा कोई न दीखा । लोगों का कौतूहल बना रहा ।

पंडिन रामजियावन को चिढाने के लिए बच्चों को मसाला मिल गया । पंडित जी कही मिलते तो बच्चे पूछते—"क्यो पडित जी, जाड़ा नही लगा ? गड्ही का पानी बदबू नही कर रहा था ? कुत्ते कैसे भौंक रहे थे ?"—रामजियावन केवल डाट कर भगा देते । मन मे सोचते थे, चिढाने दो कम्बख्तो को । जिस दलदल से भगवान ने निकाल लिया उसमे फँस जाने की अपेक्षा तो यह हँसी अच्छी । दीनानाथ ने लाज रक्खी, नही तो जिन्दगी के ये आखिरी दिन कृष्ण-मन्दिर मे बिताने पडते ।

पर जो सारा दाग अपनी छाती पर लगवाने चला गया था, वह ऐसा कहाँ था कि सब दुख खुद ही झेल जाता । घिसियावनेन वहाँ जो बयान दिया तो रामजियावन के दीनानाथ की दया भी दुम दबा कर भागी । ऐसा बौखलाए कि घिसियावन को पायें तो जान से मार डालें । क्रोध मे उनके

मुह से केवल इतना ही निकलता—"जो है सो माला'''जो है सो माला'''।" आगे की बात अन्दर ही सुलग कर रह जाती।

तमाशा देखने वाले दो चार लोगो ने चुटकी भी ली—"पडित जी सुख का धर्म तुमने निबाहा, अब दुख का धर्म कौन निबाहे? तुम्ही तो उसके सायी थे। अब सकट मे भी तुम्हारा नाम लेकर पुकार रहा है। करो न कुछ मदद।"

ऐसे लोगो को जवाब मे दो-चार मोटी गाली सुनाकर पडित जी टल जाते।

जब केस चला तो घिसियावन की दुनिया एक बार फिर पलटी। रिश्वतखोरी के इस केस को वकीलो ने जिस दॉव पर चलाया उसे देख पुलिस चकराई। केस की दफा ही बदल गई। सब कुछ हुआ, पर फँसे हुए लोगों की जो दुर्गति हुई वह उनके पहले के उठाये हुए लाभ से कई गुना अधिक हानि करके रही।

यह काण्ड कैसे हुआ? इस रहस्य पर शुरू मे जो आवरण पडा था वह मुकदमे के दौरान खुल गया। सुखदेई ने सुना तो केवल इतना ही कहा—"आस्तीन का सॉप।"

गोपाल और बिहारी बिल्कुल अनजान बने मुकदमे का रुख देख रहे थे।

मन की गति बड़ी विचित्र होती है। नदी की धारा-सी जिस ओर मुड जाय, बहती ही चली जाती है। हर विकास अपने चरम बिन्दु को छूकर लौटता है। मन की प्रवृत्ति अपने चरम तक पहुँच कर टकरा कर लौट पडती है। मन की इस गति को पलटने के लिए एक ऐसा धक्का चाहिए जो सारी चेतना को झकोर कर रख दे। उस धक्के में मृत्यु जैसी छट-

पटाहट पैदा करने की शक्ति हो। मन को इतना व्याकुल और व्यथित कर दे कि वह अपने मे छटपटा उठे। अपनी गति को मोड़े बिना उसे चैन न मिले।

वहू अपने घर की इज्जत वक्त-बेवक्त सुखदेई चाची की दया से ढँकती थी। घर मे कुछ घटा-बढ़ा कि वह सुखदेई के घर पहुँच जाती थी। अन्नदा के खिलाफ बहू को उकसाने और भड़काने मे सुखदेई का बड़ा योग था। अतः अपनी चाल की सफलता के लिए बहू को अनाज-पानी उधार देने मे सुखदेई ने जो अपनापा दिखाया, वह काम कर गया था।

अपनी अव्यवस्था तथा गोपाल की मस्ती से घर की जो हालत हो गई उसे देखते हुए बहू का सब स्वप्न भग हो गया था। एक अथाह अभाव—अव्यक्त झुंझलाहट—अपरिहार्य कलह तथा एक अजीब-सी खीझ से वह घर स्वाँग डूबा पड़ा था। चारों ओर की परेशानियों मे बहू का स्वभाव और चिड़चिड़ा हो गया था। एक चीज की खीज दूसरे पर उतरने के क्रम मे घर के किसी कोने मे शान्ति न रह पाती।

उधर अन्नदा, जो चिन्ताओं की एक 'हाय' लेकर अलग पड़ी थी, उसकी दशा और भी बुरी थी। अलग होने को उसके पास था ही क्या? पति की कौन सी सम्पत्ति लेकर, शरीर की किस शक्ति से, वह अपनी व्यथा को मेट कर निश्चिन्त होकर बैठती? ढलते हुए शरीर के सम्पन्न द्वारों को जब व्यथाओ के बवण्डर ने एक झटके से खोलकर रख दिया तो भटकते हुए रोगों ने जम कर डेरा लगा दिया।

वह अपना तन ही लेकर तो अलग हुई थी। उसका मन तो उसकी गृहस्थी के एक कोने मे ही अटक गया था। जिस घर में उसने अपने सुख-सौभाग्य का अक्षय दीप जलाया था, उसी मे दुख कलह और अभाव की जो काली छाया उतर आई थी, उसी को देख कर वह अपने में ही छटपटा रही थी। गोपाल से जो कुछ उसे मिल जाता उसी में वह बना-खा लेती। कभी भी उसने नही कहा कि यह कम है, या मेरा पूरा हिस्सा दो। बेटे से वह हिस्सा माँगे, ऐसी कल्पना से उसे लाज लगती थी।—जिसके लिए सर्वस्व किया, उसी से आज यह कह कर लूँ, कि मैंने तुम पर बहुत उपकार किए है, मेरा भी हिस्सा दो। अपने उन कर्त्तव्यो को आज उपकार की

परिभाषा देकर उसका प्रतिदान लूं। छि.! छिः!!—अन्नदा इस 'छी-छी' से अधिक न सोच सकती।

घर की बिगडती हालत ने उसकी अपनी हालत को बिगाड़ दिया। असमय में ही वह लाठी का सहारा लेकर चलने लगी और थोड़े दिनो बाद लाठी छोडकर उसने खाट का सहारा ले लिया। आँखों की ज्योति क्षीण हो गई। सामने हमेशा घना कोहरा-सा छाया रहता। शरीर का जोड़-जोड पुरवैया पाते ही जकड उठता था।

बेटा-बेटी, बहू-नाती सब से भरे इस घर में माँ की यह दशा देख कर मंदा की छाती फट चलती। घर का काम करने के साथ-साथ वह माँ की सेवा-सहायता में लगी रहती।

बेटियाँ बेटों से अधिक सवेदनशील होती है। नारी के हृदय में अक्षय करुणा का जो स्रोत ईश्वर ने बहा रखा है, वह कारण हो या और कुछ, यह तो अन्तर्यामी ही जानें, पर माँ-बाप को दुखी देखकर बेटियों का हृदय जैसा हाहाकार करता है, जैसा अपना कलेजा निकाल कर सेवा को तत्पर रहती है, वैसी सवेदना तथा सेवा की भावना विरले ही बेटों में देखी जाती है। यही बेटियाँ जब पैदा होती है तो माँ-बाप उसे अभिशाप मानते है। मानव हृदय की इस गूढ विचित्रता की थाह कौन पा सका है।

माँ की रसोई, चौका-बर्तन करने मे मन्दा को जब कुछ देर हो जाती और घर का काम पडा रहता तथा बहू दो-चार घर वालों का बायन बाँटने के बाद जब अपने घर आती और चौका-बर्तन ज्यों-का-त्यों देखती तो बिना कुछ इधर-उधर देखे तथा सोचे-समझे ही गर्जती—"मंदा! सात घरी दिन चढ आया और घर मे अभी झाड़ू तक नही पड़ी। इन्हीं सब फूहड़पनो मे तो दरिद्दर ने इस घर मे डेरा जमा रक्खा है। खाने को चाहिए चार दफा और काम के वख्त नानी मरती है।"

मंदा धीरे से जवाब देती—"भाभी! देख तो रही हो माँ की हालत, कोई उनकी देखभाल करने वाला है? आ रही हूँ, जो बाकी है करूँगी। तुम इसकी चिन्ता क्यों करती हो। मैं तुम्हें करने को तो नहीं कहती हूँ।"

मंदा का यह जवाब जहर हो जाता। बहू भभक कर बोलती—"मेरी चिन्ता देख रही है। तू जो छाती पर चढ़ी चली आ रही है, इसकी

[1] : अन्नदा

चिन्ता भी शायद तुझे है। वाप मर गया। तुझे ब्याहने को हमारी छाती पर छोड गया। जरा लौडिया की जवान तो देखो, जैसे इसी की कमाई खा रहे हैं सब।"

ऐसे बोल सुनकर मंदा खून के आँसू रो देती। एक वार नही कई वार भाभी ऐसा कह चुकी। मै कैसे जहर खाकर मर जाऊँ। यह भी कोई कहने की वात है कि वाप मर गया और मुझे छाती पर छोड गया। वाप राह का भिखारी करके तो नही मरा। खेत-वारी, घर-द्वार सभी छोड कर मरा है, लेकिन फिर भी भाभी ऐसी वात कहने से कभी न तो चूकती है और न शर्माती है।

आज जब वहू ने ऐसी बात की तो मदा सह न सकी। मन की यह घुटन संकोच-लिहाज छोड़ कर विखरी—"भाभी ! रोज-रोज ऐसी वात क्यों कहती हो। मेरा वाप कोई निराला मर गया। इस दुनिया मे कितने वाप तो कमाई से ज्यादा कर्ज छोडकर मर जाते है। वे भाई-भौजाइयाँ कैसी है जो माँ-बाप वनकर जरूरत पडने पर अपना जेवर वेच कर ननदो का ब्याह करती है। फिर मैं कौन सा ब्याह करने को तुमसे कह रही हूँ। मैं तो सारी जिन्दगी यही कँवारी पडी रह सकती हूँ।"

वहू की वात का कोई इतना तीखा जवाब दे और वह सह ले। राम कहो। जैसे जहर का वुझा तीर छोडा—"कँवारी नही रहेगी, मदा ! नाक कटाओगी, दीन-दुनिया में मुँह दिखाने लायक न रहने दोगी। जबान मत लड़ा, समझी···।"

धरती फट न गई, वर्ना मदा यह सब सुनने के पहले ही उसमे समा जाती। उसकी वोलती वन्द हो गई और आँखो मे आँसुओं की अजस्र धारा वह चली।

असहाय अन्नदा खाट पर से ही चीखी—'व ··हू···ऊ। तेरे मुह आग लगे। ईश्वर का भी कुछ डर तुझे है या नही।"—यह कहते ही उसकी धुंधली आँखो में आँसू वह चले।

क्रोध मे वह क्या वक गई, यह सोचकर सभवतः वहू भी धक्-सी हो रही। वह आगे कुछ न बोल सकी और चुपचाप चली गई—कुछ लज्जित तथा कुछ व्यथित होकर। आज पहिली बार उसे अपनी कटु वात का वोध

हुआ और खेद की एक हल्की-सी टीस उसके मन को बोझिल कर गई। अपनी वात पर उसे स्वय लाज आई।

सयोग से इसी दिन दोपहर को कोई मेहमान आया। मेहमान को आया सुनकर वहू की नाक चढ गई। माथे पर वल पड़ गये और वह मन ही मन कुछ पुटपुटाई।

रसोई में जो कुछ मोटा अनाज पका था उसे तो मेहमान को खिलाया नहीं जा सकता, इसलिए उसने जव गेहूँ के आटे के घड़े में हाथ डाला तो छूँछा घड़ा लुढक गया। घर मे गेहूँ भी नही। रहे भी कहाँ से जब तक रहा तव-क ऐसे उड़ा जैसे पराई सम्पत्ति हो। वीज के लिए थोडे से गेहूँ वखार में रखे थे। वह कैसे पलटा जाय।

गुस्से से खीझकर वहू वडबड़ाई—'जब देखो तब कोई न कोई मुआ पहुँचा ही रहता है। जैसे यहाँ वरखाभरी है। अब जाऊँ कहाँ मे आटा लाऊँ तो इनके लिए थाली सजाऊँ। घर के लोग मोटा-महीन खा रहे है, इन मेहमानों को तो घी-चुपडी चपाती ही सजानी पडती है। चलूँ किसी के घर देखूँ।'—धीरे-धीरे कहती हुई वह सुखदेई के घर गई।

घर मे घुसते ही आँगन में खड़ी होकर उसने कहा—"अइया! थोड़ा-सा गेहूँ का आटा देना। मैं तो इन मुए मेहमानों से तग आ गई। एक-न-एक रोज पहुँचा ही रहता है। एक कछली घी भी दे देना। भैंस व्यायें तो सब इकट्ठा ही दे दूंगी।"—वहू अभी यह कह ही रही थी कि सुखदेई कोठरी से निकल कर आँगन मे आई। भूखी वाघिन जैसे वकरे को घूरती है वैसे ही आग्नेय नेत्रों से सुखदेई ने वहू को घूरा और फिर कुछ देर बाद नैन नचा के मुह मिचका के, हाथ चमका के बोली—

"अइया, थोड़ा आटा दे दो···। अइया थोड़ा घी दे दो···। मेहमान आया है···। मेहमान की जनी! राँड!! लाज तो नहीं आती। भतार जाल फैलाकर मेरे आदमी को फँसा रहा है। देश-परस्त, हाकिम-हुक्काम सब जगह मे हमारी इज्जत लूट रहा है। तू 'अइया' कहती जाती है। यहाँ अपनी इज्जत पर पर्दा डलवाने! तेरे लिए मैंने अपनी पुरखों से चली आती दुश्मनी त्यागी, तेरी इज्जत-आवरू के आड़े आई और तेरा ही भतार हमारी इज्जत की जड खोद कर रख गया। खबरदार, जो आज से इस

घर में कदम रखा ! तुम सब साँप-साँपिन हो। तुम्हारे काटे की लहर भी नहीं। यह भी कान खोल कर सुन ले, आज तक जो यहाँ से भर-कर ले जाती रही है, कल शाम तक न दे गई तो उठते-बैठते तेरा पूत-भतार मरापूंगी और सारे गाँव को सुनाऊँगी। भोली बनी है, जैसे कुछ जानती नहीं, 'मैं बउरहिया आगि कहाँ पावौं।' जिस पत्तल मे खाया उसी में छेद किया। मैं तेरी इज्जत ढँकती रही और तेरा खसम···? राम-राम !'—यह कहती हुई सुखदेई ने अपनी दसो अँगुलियाँ एक साथ चटा-चट चटका दी।

बहू सुखदेई का अप्रत्याशित उग्र रूप देखकर हतप्रभ् हो गई। उसका वह हाथ नचाना तथा बौखलाई-सी स्थिति देख कर पहले तो वह डर गई, पर थोड़ी देर बाद जब जवाब देने को मुह खोला तो सुखदेई फिर चिल्लाई —"रहने दे, बोलने को मरती है। क्या बोलेगी? मेरे ही टुकडो से इज्जत ढँकने वाली, अब तू मुझे सिखावन देगी? जा, चली जा यहाँ से। अब तक जो ले गई है वह पहुँचा देना कल। तेरे लिए मेरे घर मे अब घी-आटा नही।" यह कह कर सुखदेई ने बहू के हाथ से बर्तन छीन कर बाहर फेंक दिया।

किस घर की बहू और आज किस तरह अपमानित करके दुतकारी गई ? हाथ का बर्तन तक छीन कर फेंक दिया गया ?—क्षण भर में इस विचार ने बहू के हृदय को मथ कर निढाल कर दिया। मरणान्तक पीडा से छटपटा कर वह घर को भागी, बर्तन लेने की भी सुधि न रही। उसे ऐसा लगा जैसे उसका समस्त गौरव आँधी की धूल-सा उड़ गया। दोनो हाथो से मुंह ढँककर जब वह घर पहुँची तब कहीं उसे साँस आई। सुखदेई की मुद्रा तथा उसकी बातें गर्म सलाख-सी उसके हृदय को साले जा रही थीं। इतना अपमान !

इतना अपमान तो गाँव के उस असहाय से व्यक्ति का कभी न हुआ होगा जिसके आगे-पीछे कोई नही। भीख माँगने वाले को भी लोग इस प्रकार दुतकार कर नही फटकारते। उस अभागी के हाथ से तो बर्तन तक छीन कर फेंक दिया गया। इससे बढ़कर मरण-प्राय अपमान और

क्या हो सकता है ? अपने ही चलते अपनी सबल गृहस्थी पर उसने जो कुठाराघात किया था, जिस अविचार से उसने उसे अन्दर ही अन्दर खोखला कर दिया था, वही आज चरमरा कर फूटे ढोल सी बज उठी। उसकी गति यह हो गई कि वह कहाँ जाय, क्या करे ? वह किसी से कुछ न बोल कर चुपचाप अँधेरे कमरे मे पड रही।—मन की वेदना को हल्का करने के लिए अँधेरे एकान्त से बढकर और कोई जगह नहीं।

मदा ने जब बहू को इस प्रकार चुपचाप आकर अँधेरे कमरे मे पड जाते देखा तो उसकी हिम्मत नही हुई कि चल कर पूछे—क्या हुआ ?

उधर मेहमान के लिए खाना बनाने को देर हो रही थी। जब उसे कुछ न सूझा तो उसने मुन्ने से गोपाल को बुलवाया, जो मेहमान के पास बैठा बाते कर रहा था। गोपाल जब घर मे आया तो मंदा ने कहा—"भैया ! घर मे गेहूँ का आटा बिल्कुल नही है। भाभी कही गई थी लाने पर शायद मिला नही। चुप अपने कमरे मे पडी है। क्या करूँ ? मेहमान को खिलाने के लिए देर हो रही है।"

गोपाल को न जाने क्या सूझा, झट से बोला—"नही खिलाया जायेगा। खिलाया भी जाय तो यही, जो कुछ घर मे बना है। कहाँ है तेरी भाभी ?"

गोपाल की बात सुनकर मदा भौचक्की हो गई—भइया को क्या हुआ है ? उसने धीरे से कहा—"अन्दर कमरे मे है।"

गोपाल धड़धड़ाता हुआ किवाड़ खोलकर कमरे मे घुस गया। उस की वह तेजी और रूप देखकर मदा डर गई।—न जाने क्या होगा। भइया क्रोध मे भाभी को मार बैठे तो लेने के देने पड़ जायेंगे। मेहमान के आगे इस घर मे जो काण्ड मचेगा वह बहुत बुरा होगा—यह सोचकर 'भइया!' कहती हुई वह कमरे मे घुस गई।

मदा को इस प्रकार आते देखकर गोपाल चीखा—"मदा···!···! हट जा यहाँ से।"

गोपाल की उग्रता वह सह न सकी और सहम कर पीछे हट गई। गोपाल बहू को जोर-जोर से सम्बोधित कर बोलने लगा—"गृहलक्ष्मी !

उठो, इस तरह अँधेरे में मुह छिपा कर क्यो पडी हो। अपनी दरिद्रता का वैभव भी देखो। कैसा दप्-दप् उजागर हो रहा है। अच्छा किया, दूसरे के अन्न से अपने मेहमान की थाली कब तक सजाओगी! मर्द केवल कमाता है। कमा कर जो भी लाता है उसे अपनी गृहिणी को सौप देता है। घर की वह लक्ष्मी चाहे तो एक दिन मे फूँक-ताप कर बराबर कर दे और चाहे उसी में वक्त पर अपनी इज्जत बचाए। होने पर जिस ढग से तू उडाती थी और न होने पर जिस प्रकार तुझे किसी से माँगते लाज नही लगती थी, वह क्या मैं देखता नही था, समझता नही था? सब देख कर अनदेखा कर देता था, सगा जान कर कहाँ गई थी···! चाची के यहाँ···! नही दी भीख—! मैं अनजाना बन जाता था। तेरी अक्ल पर जो मोटी पर्त पड गई है, वह किसी भी बात को तेरी खोपडी मे घुसने नही देती। मैंने तुझे तेरी मरजी पर छोड़ दिया। तेरी आदतो को खुली छूट दे दी। मैं ही कमाने वाला, पर जिस ढग से तू हम सब को खिलाती-खाती थी, वह ढग एक दिन इस घर को कैसा बेढंगा कर देगा, वह भी मैं समझता था। पर जब गृहणी होकर, मालकिन होकर तूने नही समझा, आगा-पीछा नही देखा तो मै ही क्या कहता। जिसके पेट से मै जन्मा, जिसने अपना रक्त देकर मुझे पाला, वही मुझे खाना नही खिला रही है, जिस दिन से तूने यह विश्वास खोया, उसके हाथ से छीन कर स्वय मेरा सर्वस्व हो बैठी, उसी दिन मैंने इस विनाश की झलक देखी थी।

"यह जिन्दगी नर्क न बन जाय, यह गृहस्थी उजाड न हो जाय, इसी लिए मैंने तेरी बात रक्खी। मुझे जिन्दगी तेरे साथ बितानी है, इसीलिए मैंने तुझे खुश रक्खा। तेरी मरजी का किया। जिस माँ से मैं जन्मा था उस माँ को अपने मुँह से कहकर अलग कर दिया। उसी दुख से आज वह असमय मे ही असहाय-सी मरण-सेज पर पड़ी है। हमारी इस करनी का फल ईश्वर हमें यही देगा। जब माँ की सेवा करने का अवसर आया तो हमने उसे एक किनारे कर दिया। आज इज्जत हमारे घर मे किनारा कर रही है। मेरी जिन्दगी मे नर्क का कौन सा दुख बचा है?"—गोपाल मन का सारा आक्रोश इसी क्षण निकाल लेना चाहता था।

वह बिस्तर में मुंह छिपाए सिसक रही थी। सम्भवतः गोपाल की इन

बातों से अधिक सुखदेई का व्यवहार उसे कचोट रहा था। मन्दा सहमी-सी दरवाजे पर खड़ी थी। इतने मे ही मुन्ना दौड़ता हुआ बाहर से आया और गोपाल को पकड़कर बोला···"पिताजी! पिताजी!! वे चले गए। मुझसे कहने लगे कि एक जरूरी काम है और चले गए।"

मन्दा ने सुनकर केवल इतना ही कहा···"हाय हाय! बिना खाना खाए ही!"

गोपाल के लिए तो जैसे कुछ हुआ नही, उसी तरह बोला—"अच्छा हुआ चले गए। हमारी बेइज्जती का झण्डा जब तक खुल कर लहराये नही, जब तक लोगों की अँगुलियाँ इधर न उठे, तब तक मजा ही क्या? अब उठो लक्ष्मी, सुनने के साथ-साथ देख भी लो। इस घर में किस कदर मनहूसियत छा गई है, मेहमान बिना खाए चला गया, सुगृहणी होने का इससे बड़ा तुम्हें और क्या प्रमाण चाहिए। जिस दरवाजे पर कभी दुनिया भर के राहगीर भूले-भटके, देर-सवेर आकर टिकते थे और चाहने पर भी अपने सत्तू-पिसान की गठरी न खोल पा कर, इस घर के अन्न से सगे-सम्बन्धियों-सा समादर पाते थे, उसी दरवाजे से अब सचमुच के सगे-सम्बन्धी भूखे लौटने लगे है। इससे अधिक विडम्बना इस घर की क्या होगी? जब मैं हड्डी-तोड मेहनत करके इस घर को अनाज से भर देता था, तब भी इस चौके पर मेहमान को तूने अकेला ही उठाया। मैं कोई न कोई बहाना करके बाद मे उठता था। जब यही गति देखी तो मैंने भी मस्ती का बना ओढ़ा। मेरी वह मस्ती भी ऐसा दिन दिखाने लायक नहीं थी, पर तेरी करतूतों ने आज वह दिन दिखाया जो किसी हलवाहे चरवाहे के घर भी न होता होगा। मैं इसीलिए जोर-जोर से बोल रहा था कि दूसरे के धन पर कब तक लक्ष्मीनारायण? मेहमान ने मेरी बात सुनी होगी। अच्छा हुआ, उसका चला जाना ही ठीक था।"

यह कह कर गोपाल घर से निकला। वह जो अब तक सुखदेई के व्यवहारों के ख्यालों डूबी थी, मेहमान का चला जाना सुनकर हड़बड़ा कर उठ बैठी और अपने से ही केवल इतना बोली—"क्या मेहमान चला गया?" सम्भवतः इस धक्के से ही उसके आंसू सूख गए। वह खोई-खोई

मी उठी और आगन मे आई। मन्दा को एक कोने में चुप बैठी देखा तो पूछा—"मेहमान चला गया ?"

"हा भाभी, मुन्ना कह रहा है कि चले गए।"—मन्दा की आवाज पर जैसे मनो बोझ था।

वह जहां खडी थी वही की वही बैठ गई—थकी-सी, हारी-सी—वह भटक गई। जिन्दगी का दाव हार गई। भरे-पूरे घर-परिवार पर कगाली की जो छाया पड गई है, इज्जत के सिर बेइज्जती का ढोल पिट गया है, उनका कारण एक मात्र वह है। वह अपने चलते सुगृहिणी नही हो सकी, गृहस्थी नहीं जमा सकी। गाव देश मे अपनी और अपने घर की इज्जत नही रख सकी। ये सब बातें उभर कर उसके सामने आईं। बुद्धि पर पडा हुआ कुमति का पर्दा इन दो आघातों से फट कर छिन्न-भिन्न हो गया। मन के निर्मल दर्पण में सब तस्वीर उसे साफ-साफ नजर आई। उन तस्वीरों को उसने कितना विकृत कर दिया, यह भी स्पष्ट झलका। अब मन की ग्लानि वह किसे सुनाये, अपनी पीड़ा किसे दिखाए ?

अन्नदा ने जब सब कुछ सुना तो 'हाय' करके रह गई। यही सब देखने और सुनने को तो वह जिन्दा है। इस घर और गृहस्थी का गौरव नष्ट हो गया, इसमे रहने वाले लोगों की इज्जत आँधी की धूल-सी उड़ चली। उसने चाहा इसी वक्त बहू और गोपाल को बुलाकर जी भर कर सुनाये। पर सोचा, इस वक्त कुछ कहने से सभव है बहू कुछ और मतलब लगाये, अतः उसे बाद में ही बुला कर समझाऊँगी। अब इस घर मे गर्व करने लायक रह ही क्या गया है।

अच्छी बात तो प्रचार करते-करते भी मुश्किल से प्रकाश मे आती है, पर बुरी बातें तो जैसे पर लगा कर उडती है। उन्हे कितना ही दबा कर क्यों न रखो, पर हवा भर की सास पाते ही वे उड़ चलती है और जो एक बार बाहर निकली तो विद्युत-गति से फैलती है। मुबारक रहे औरतों की जात ? उनकी जबान पर चढी बात तो हवा की गति से भी तेज उड़ती है।

किस तरह गोपाल की बहू आज सुखदेई के यहा आटा मांगने गई थी और सुखदेई ने किस तरह उसे फटकारा तथा मेहमान बिना खाये

बातों से अधिक सुखदेई का व्यवहार उसे कचोट रहा था। मन्दा सहमी-सी दरवाजे पर खडी थी। इतने मे ही मुन्ना दौड़ता हुआ बाहर से आया और गोपाल को पकड़कर बोला''''पिताजी! पिताजी!! वे चले गए। मुझसे कहने लगे कि एक जरूरी काम है और चले गए।"

मन्दा ने सुनकर केवल इतना ही कहा''''हाय हाय! बिना खाना खाए ही!"

गोपाल के लिए तो जैसे कुछ हुआ नही, उसी तरह बोला—"अच्छा हुआ चले गए। हमारी बेइज्जती का झण्डा जब तक खुल कर लहराये नही, जब तक लोगों की अँगुलियाँ इधर न उठें, तब तक मजा ही क्या? अब उठो लक्ष्मी, सुनने के साथ-साथ देख भी लो। इस घर मे किस कदर मनहूसियत छा गई है, मेहमान बिना खाए चला गया, सुगृहणी होने का इससे बडा तुम्हे और क्या प्रमाण चाहिए। जिस दरवाजे पर कभी दुनिया भर के राहगीर भूले-भटके, देर-सवेर आकर टिकते थे और चाहने पर भी अपने सत्तू-पिसान की गठरी न खोल पा कर, इस घर के अन्न से सगे-सम्बन्धियों-सा समादर पाते थे, उसी दरवाजे से अब सचमुच के सगे-सम्बन्धी भूखे लौटने लगे है। इससे अधिक विडम्बना इस घर की क्या होगी? जब मैं हड्डी-तोड मेहनत करके इस घर को अनाज से भर देता था, तब भी इस चौके पर मेहमान को तूने अकेला ही उठाया। मै कोई न कोई बहाना करके बाद मे उठता था। जब यही गति देखी तो मैने भी मस्ती का बना ओढ़ा। मेरी वह मस्ती भी ऐसा दिन दिखाने लायक नही थी, पर तेरी करतूतो ने आज वह दिन दिखाया जो किसी हलवाहे चरवाहे के घर भी न होता होगा। मै इसीलिए जोर-जोर से बोल रहा था कि दूसरे के धन पर कब तक लक्ष्मीनारायण? मेहमान ने मेरी बात सुनी होगी। अच्छा हुआ, उसका चला जाना ही ठीक था।"

यह कह कर गोपाल घर से निकला। बहू जो अब तक सुखदेई के व्यवहारों के ख्यालों डूबी थी, मेहमान का चला जाना सुनकर हडबडा कर उठ बैठी और अपने से ही केवल इतना बोली—"क्या मेहमान चला गया?" सम्भवत. इस धक्के से ही उसके आंसू सूख गए। वह खोई-खोई

सी उठी और आंगन में आई। मन्दा को एक कोने मे चुप बैठी देखा तो पूछा—"मेहमान चला गया ?"

"हां भाभी, मुन्ना कह रहा है कि चले गए।"—मन्दा की आवाज पर जैसे मनो बोझ था।

वह जहां खडी थी वही की वहीं बैठ गई—थकी-सी, हारी-सी—वह भटक गई। जिन्दगी का दांव हार गई। भरे-पूरे घर-परिवार पर कमाली की जो छाया पड़ गई है, इज्जत के सिर बेइज्जती का ढोल पिट गया है, उसका कारण एक मात्र वह है। वह अपने चलते सुगृहिणी नही हो सकी, गृहस्थी नहीं जमा सकी। गाव देश मे अपनी और अपने घर की इज्जत नही रख सकी। ये सब बातें उभर कर उसके सामने आई। बुद्धि पर पड़ा हुआ कुमति का पर्दा इन दो आघातों से फट कर छिन्न-भिन्न हो गया। मन के निर्मल दर्पण मे सब तस्वीर उसे साफ-साफ नजर आई। उन तस्वीरों को उसने कितना विकृत कर दिया, यह भी स्पष्ट झलका। अब मन की ग्लानि वह किसे सुनाये, अपनी पीड़ा किसे दिखाए ?

अन्नदा ने जब सब कुछ सुना तो 'हाय' करके रह गई। यही सब देखने और सुनने को तो वह जिन्दा है। इस घर और गृहस्थी का गौरव नष्ट हो गया, इसमें रहने वाले लोगों की इज्जत आँधी की धूल-सी उड़ चली। उसने चाहा इसी वक्त वह और गोपाल को बुलाकर जी भर कर सुनाये। पर सोचा, इस वक्त कुछ कहने से संभव है वह कुछ और मतलब लगाये, अत: उसे बाद मे ही बुला कर समझाऊँगी। अब इस घर में गर्व करने लायक रह ही क्या गया है।

अच्छी बात तो प्रचार करते-करते भी मुश्किल से प्रकाश में आती है, पर बुरी बातें तो जैसे पर लगा कर उड़ती है। उन्हें कितना ही दबा कर क्यों न रखो, पर हवा भर की सांस पाते ही वे उड़ चलती हैं और जो एक बार बाहर निकलीं तो विद्युत-गति से फैलती हैं। मुबारक रहे औरतों की जात ? उनकी जबान पर चढी बात तो हवा की गति से भी तेज उड़ती है।

किस तरह गोपाल की वहू आज सुखदेई के यहा आटा मांगने गई थी और सुखदेई ने किस तरह उसे फटकारा तथा मेहमान बिना खाये

कैसे चला गया ? गांव मे जहाँ चार औरतें जुटी कि यही चर्चा थी। चूंकि आज का यह नया और ताजा समाचार था, इसलिए इसी की चर्चा जोरों पर थी।

वह शाम को बाहर निकली और ऐसे ही घूमते-घूमते वह अपने खेतो की ओर चली गई। शाम का झुटपुटा फैल रहा था। वह अपने ही मे खोई चली जा रही थी कि उसने कुछ फुसफुसाहट सुनी। आदमी के मन में जब कोई चोर हो, वह कहीं भी कोई बात सुनता है तो यही समझता है कि उसी के बारे मे बात हो रही है। वह वहीं ओट लेकर ठिठक गई। सचमुच उसी के बारे में बातें हो रही थी। दिशा-मैदान गई हुई औरतें अपने-अपने घरों में लौटने से पहले वह के घर की ही चर्चा कर रही थी।

एक बोली—"कुछ सुना तुमने दीदी ! गोपाल के घर की बात ? चारों तरफ पुजाई-पुजाई घूमती थी। आज सारी पोल-पट्टी खुल गयी।"

दूसरी आश्चर्य से बोली—"हाँ, कुछ उडी-पडी तो मैंने भी सुनी है, पर कैसे हुआ यह सब ?"

"कैसे क्या रे ! जब घर मे बेशऊर औरत आ जाय तो बना-बनाया घर इसी तरह ढह जाता है। तुमने भी तो सुना ही होगा, अन्नदा दीदी ने कैसे इस घर को बसाया ? मेरी सास बताती थी, अन्नदा के पहले इस घर मे उल्लू और चमगादड रहते थे। सारा घर भाँय-भाँय करता था। कोई दिया जलाने वाला तक न था घर मे। गोपाल के बाबूजी बम्बई मे रहते थे। जब अन्नदा को ब्याह के लाए तो इन्हें भी बम्बई चलने को कहा। मगर धन्य हो अन्नदा ! जवानी के दिनो का सब सुख छोड कर उन्होंने इस घर में दीप जलाया, और खेती-बारी क्या नहीं बनाया ? सारा गाव उनकी सुघराई मे दग रह गया। मगर जब मे गोपाल की बहू की गोडी पडी कि तब से चौपट ही होता गया। जो सास इन्हें अपनी बेटी की तरह समझ रही थी उसी की जान को रात-दिन लगाए रहती थी। बेचारी मन्दा कितनी सीधी और भोली लडकी···उससे तो ऐसा खार खाती है जैसे सौत हो। जब तक अन्नदा दीदी का राज रहा तब तक तो पण्डिताइन कभी उनकी ड्योढ़ी नहीं लाघी और जब उनको अलग कर

दिया गया तो ये लक्ष्मी पंडिताइन से ऐसी घुली कि दात-काटी रोटी हो गई। हां तो उसने धोया भी खूब।' पहली वाली औरत ठिकाने से इतिहास समझाने लगी।

दूसरी बोली "हा दीदी, सुना तो मैंने भी कि गयी थी आटा मागने। शायद कोई मेहमान आया था। ऐसा भी घर किस काम का कि किसी के आए-गए चुटकी भर आटा न निकले।"

तीसरी बात काट कर बोली—"निकले भी कहा से। खलिहान मे जब घर मे राशि आती है तो देखो कभी उनके घर का खाना ' सब का ठाट तालुकदारी हो जाता है। जौ, मटर, ज्वार, बाजरा तो किसी के पचता ही नही। भैंस जिन दिनो लगनी हो और कभी दवा के लिए भी दही मागने जाओ तो जानो क्या कहती है। ऐसा मुंह बना के बोलती है जैसे नैहर मे दूध से ही नहाती थी। कहती थी''''अरे बहिन ! मैं तो दूध ही नही जमाती। यहा तो सब दूध पी जाते है। मैं भी सोचती हूँ कि खाना तो तुम लोगों ने ही है, चाहे दूध पी लो, चाहे दही खा लो ?'

पहली धीरे से हँसी और बोली—"हा तभी तो पंडिताइन ने कलछी और थाली उठाकर फेंक दी। ऐसी बेइज्जती तो गाव के किसी हलवाहे चरवाहे की भी नहीं होती। भिखमगे को भी लोग इस तरह से नहीं दुतकारते।"

बहू ओट मे खड़ी-खडी यह सब हृदय-विदारक बाते सुन रही थी।

दूसरी समर्थन करती हुई बोली—"फेंक क्यों न दे। कोई एक दिन की बात होती तो और बात थी। मैं तो यह जानूं कि इनके घर तो इन के राज मे जब भी कोई मेहमान आया तो ये पडिताइन के घर मे ही घी आटा लाकर अपनी इज्जत ढँकती थी। उधर वो बेचारी इनकी इज्जत के लिए खडी रहती थी और इधर इनके बालम ने पण्डित को ऐसे जाल में फँसाया कि बेचारे कही के न रहे।"

पहली जरा गंभीर होकर बोली—"हां, कैसा जाल फैलाया गोपाल ने। किसी को कानो-कान पता न चला। सारा गांव सोचता ही रह गया, पर भनक न लगी कि किसकी करतूत है। उन्होंने ही साहब के दस्तखत

उस नोट पर करवाये और फिर बिहारी के हाथ हरिया को देकर घिसियावन को देने के लिए भेज दिया। घिसियावन भी अन्धा हो गया था। इतनी अन्धेर मचाई थी सारा गाव तबाह था। मगर उसी के साथ-साथ बेचारे पण्डित भी पिस गए।''

दूसरी बोली—"अरे नहीं दीदी ! पण्डित ही तो बीच के दलाल थे। घिसियावन की हिम्मत थी ऐसा करने की? वह तो सब पण्डित ही करते थे। मगर आखिरी वक्त में मारा गया वही बेचारा। हा वह बात तो रह ही गई। पंडिताइन को कही पता लगा था कि पण्डित तथा सरपंच को फमाने का जाल गोपाल ने फैलाया था। इसी मौके पर गोपाल के घर मेहमान आया और बहूरानी चली आटा माँगने। पण्डिताइन तो जहर पिए बैठी ही थी। गोपाल की बहू को देखते ही जो आग बरसी तो उनकी सारी शेखी गुल। अरे वह तो कहो कि वहा से भागी, नहीं तो पण्डिताइन झोंटी पकड़ कर लतियाती भी।"

पहली बोली—"सुना है गोपाल ने घर जो झगडा मचाया तो बाहर बैठा मेहमान उनकी बातें सुनकर लाज के मारे पानी-पानी हो गया और बिना किसी से कहे-सुने चुपचाप बिना खाए चला गया।"

"हा दीदी ! वक्त की बात है। इसी दरवाजे पर आए दिन अनजान राहगीरों का ताता लगा रहता था और उनके खाने-पीने का इन्तजाम मेहमानों की तरह यही अन्नदा अइया किया करती थी। आज उसी दरवाजे से मेहमान भूखा चला जाता है। औरत ही घर की लक्ष्मी है। चाहे तो इज्जत बनाए और चाहे बिगाडे, जैसी सुलच्छिनी और शऊरदारिन हो। देखो न, लक्ष्मी जैसी सास की क्या गति कर दी। उस बेचारी को तो जैसे एक 'हाय' समा गई है। उनको अलग करके रनवास भोगने का जो सपना देखा था, वह उलट कर बनवास बन गया।"

यह कहती हुई वे तीनों चारों औरतें अपने-अपने घर को चली गईं। उन सबकी नजर बचा कर बहू घर को भागी।

रास्ते में कुए पर दो औरतें पानी भर रही थी, वे भी शायद यही चर्चा कर रही थीं, बहू को ऐसा लगा। पर अपनी यह अक्षय कीर्ति, जो अपनी करनी से वह कमाई थी, खड़ी होकर सुनने का साहस न संजो

वोर होकर 'अम्मा' शब्द को अन्नदा के चरणों में समर्पित कर दिया और साथ ही वहू को भी समर्पण।

मन्दा वहू को इस तरह देखकर चकित हो गई।

अन्नदा चाह कर भी न उठ सकी तो मन्दा ने सहारा देकर उठाया। अन्नदा की सूखी आखें गीली हो चली थी। उसने वहू का सिर अपनी छाती से चिपका लिया।

वहू विह्वल होकर वोली—"अम्मा ! भगवान मुझे माफ नही करेगा, पर तुम माफ कर दो। आज मेरी आँखें खुल गयी। मेरी आखो के इतने मोटे पर्दे को चीरने के लिए शायद इतने वडे धक्के की जरूरत थी, जो मृत्यु से भी ज्यादा दुखदायी हो। तभी तो आज धन-धर्म सभी कुछ गँवा देने के वाद ये आँखे खुली। अम्मा ! मैंने तुम्हे नही समझा, इस घर को नही समझा। अपने अह की आग मे सव को क्षार-क्षार कर आज मैं स्वय क्षत-विक्षत अवस्था मे पड़ी हूँ।"—छाती से सिर हटा कर वहू अन्नदा के पैरो पर अपनी गीली आँखें रगड़ती हुई वार-वार यही कहती थी—

"अम्मा ! मुझे माफ कर दो—अम्मा ! मुझे माफ कर दो।"

गोपाल, जो माँ के लिए कुछ दवा लाने गया था, न जाने कव का आकर ठगा-सा खड़ा यह देख रहा था। उसे लगा कि कही यह स्वप्न न हो। मेरी वहू और माँ के चरणो मे·· होश रहते तो ऐसा दृश्य देखा नही जा सकता।

उसने वोलने की कोशिश की, पर आवाज क्यों न निकलती, हुआ क्या था ? स्वाभाविक रूप से कठ फूटा—"माँ, दवा ले आया हू।"

अनजाने ही उसका छिन जाने वाला सुख जैसे आज जीवन की इस अन्तिम घड़ी में अनाहूत लौट आया। हाथ फैला कर उसने कहा—"गोपाल···।"

जव गोपाल उसकी पकड़ मे आया तो खीचकर उसने उसे छाती से लगा लिया, विह्वल हो वोली—"वेटा ! दवा मुझे मिल गई है। अव दवा की कोई जरूरत नही।" एक हाथ वह गोपाल की पीठ पर फेरती जा रही थी और दूसरा वहू के सिर पर। नेत्रो से वहती प्रेम की धारा दोनों को भिगो रही थी।

मदा ने दीये की वाती सीक से सरका कर जरा और उकसा दिया। दीप दूने तेज से जला और अन्नदा का मुरझाया चेहरा एक फिर प्रदीप्त हो उठा। वहू को पैरों से हटाती हुई वह बोली—"उठो बहू, उठो। आज मुझे मेरी खोई निधि मिल गई। इतनी दुखी मत हो। मैं सब सुन चुकी हूँ। अभी कुछ नहीं विगड़ा है। जिन्दगी मे सुख-दुख दोनों न चले तो जिन्दगी किसी काम की नहीं। यह दुख ही तो है जो हमे आँखे खोलकर चलने को सचेत करता है। सुख मे डूबा आदमी अन्धा होकर चलता है और जब ठोकर खाकर गिरता है तो पीडा के दुख से उसकी आँख खुल जाती है। दुनिया अपने असली रूप मे दिखाई देने लगती है। इसीलिए बहू ! इस दुख को भी ईश्वर की देन समझ कर सिर-माथे धरो। जिस दुख से तुम दुखी हो, वह चार दिन का है। दो-चार दिन लोग चर्चा करेंगे, तुम सुनकर लाज से मर जाओगी, पर इस लाज मे डूबी रहने से ही उनकी चर्चायें बन्द नही होंगी। बन्द होगी तब, जब तुम फिर कुछ कर दिखाओगी। जो गँवाया है, उससे कमाओगी। उस वक्त यही लोग तुम्हारे गुन गायेंगे। अपनी बहू-बेटियों को तुम्हारा उदाहरण देकर सीख देंगे। आदमी की इज्जत उसके अपने खाने-पहनने से नही बनती। इस दुनिया मे कुल-परिवार, नाता-रिश्ता, गाँव-समाज आदि का जो सम्बन्ध आदमी से जुड़ा है, उसे भूलकर चलने से वह अपने में कुछ नही रह जाता। इन सबको साथ लेकर चलने मे ही उसकी इज्जत है, उसका गौरव है। इसे छोडकर वह अपने में चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, पर वह कुछ नही है, एक तिनका भी नहीं। इन्हे साथ लेकर चलने वाला, इन्ही से अपनी जय-जयकार बुलवाता है। यही सब तो उसकी महत्ता को, उसके कर्मो को गौरव देते है।

"वह तुम घर की लक्ष्मी होकर आई हो, तो कुछ ऐसा करो कि घर धन्य-धान्य से भरा रहे। इस घर की इज्जत से तुम्हारी इज्जत है, कुल परिवार की इज्जत है। इसे बचाओ, इसे बढाओ और तब देखोगी कि इसके सहारे तुम्हारी अपनी इज्जत, तुम्हारी अपनी कीर्ति किस तरह बढती है।

"उठो, जाओ, घर-गृहस्थी देखो। आज तुम्हारे मन की सारी मैल धुल गई है। कल इस घर की, परिवार की मैल धुल जायेगी।"···

यह कह कर अन्नदा एकबारगी गोपाल की ओर मुड़ी। तर्जनी का इशारा कर कहा—"तू भी सुन ले गोपाल! मैं तेरी भी सब हरकत देख रही थी, पर करती क्या? जब बेटा जवान हो जाय तो माँ-बाप को उसके रुख पर चलना चाहिए। मैं सब देखकर भी तुझे कुछ कह न पाती थी। अब यह सब जाल-फरेब की बातें छोड़। अपनी घर और गृहस्थी को चेत। बाल-बच्चे वाला हो गया है। इस तरह की मटरगश्ती और मस्ती से गृहस्थी की गाड़ी नहीं चला करती. बेटा! अपने काम को चेतो, वक्त को चेतो। लाओ, दवा-सवा फेंको। अब दवा मुझे काम नहीं करेगी। मेरे मन का काँटा निकल गया।"

गोपाल चला गया।

मदा ने आंचल से अपनी आँखों के आसू पूछे। वह वहीं खड़ी-खड़ी भाभी और भैया को देख कर, माँ की बातें सुनकर किस सुख में अपने आँसुओं से नहाती रही, यह एक अन्तर्यामी के सिवा और कोई न जान सका। वह माँ के पास आई और भरे कंठ से बोली—"माँ! कुछ खाओगी? क्या बना दूँ?"

अन्नदा को अब मदा का ध्यान आया, उसे पकड़ कर बोली—"तू कहाँ थी बिटिया? आ, मेरे पास बैठ, आज मैं बहुत खुश हूँ।" वह कह कर उसने मंदा को खाट पर ही बैठा लिया।

मंदा फिर बोली—"माँ! दो दिन से तूने अन्न त्याग दिया है। इस तरह कैसे रहेगी। पेट में कुछ न जाने से तो और कमजोर हो जायेगी।

अन्नदा सूखी हँसी हँसी···"तो तू समझती है कि मैं अब खाकर

जोरदार बनूंगी। जो कुछ खाना था, अब खा चुकी। छोड़ा नहीं है, खाया ही नहीं जाता। अब चलने के दिन आ रहे हैं।"

मंदा ने मां के मुंह पर हाथ रक्खा और बोली—"मां क्या कहती हो। ऐसी असगुन बात मुंह से मत निकालो।"

अन्नदा ने मंदा का हाथ अपने मुंह से हटाते हुए कहा—"इसमे असगुन की कौन-सी बात है बेटी ! मुझे अब कुछ दुख नहीं। तेरी चिन्ता बहुत भारी थी, सो अब समझती हूँ कि वह भी दूर हो जायगी। विपत्ति के बादल छँट गए हैं।"

"पहले अपने खाने के लिए बताओ, फिर ये चिन्ताओ की बात करना। थोड़ा दूध गरम कर दूँ, वही पी लो। खाली पेट कितने दिन तक रहोगी ?" यह कह कर मंदा उठी।

अन्नदा ने केवल इतना ही कहा—"जैसी तेरी मरजी।"

मंदा जब रसोई से आंच लेकर मां के कमरे की ओर चली तो बहू, जो सामने बैठी देख रही थी, बोली—"आग कहा ले जा रही है मदा ?"

मन्दा वही ठिठक कर खडी हो गई, धीरे से बोली—"अम्मा दो तीन दिन से कुछ खा ही नहीं रही है। सवेरे बिहारी भइया थोड़ा दूध दे गए थे, वही गरम करके दे दूं। खाली पेट कब तक रहेगी ?"

बहू बिना कुछ कहे उठी और मन्दा के हाथ से आग लेकर रसोई मे वापस रख आई। मन्दा ठगी-सी खड़ी देखती ही रह गई। अभी का यह व्यवहार उसकी समझ मे नहीं आया। अभी कुछ देर पहले भाभी ने मा के सामने क्या कहा और अब क्या कर रही है ?—यही सोचकर वह आश्चर्यचकित-सी खड़ी ही थी कि आग रसोईघर मे रख कर वापस आई और बोली—"दूध कहा है ?"

मन्दा ने मा के कमरे की ओर केवल इशारा भर कर दिया।

"खडी क्यों रह गई ? चलो अम्मा के पास बैठो।"—यह कहती हुई आगे बहू चली। बहू ने कमरे से दूध लाकर गरमाया और ले जाकर अन्नदा को अपने हाथों से पिलाया।

अन्नदा ने 'बहू' कहकर उसके सिर पर हाथ फेरा। बहू कुछ बोली नहीं। हृदय के जिस परिवर्तन से वह यह सब कर रही थी, उसमें जो

लाज और संकोच का अंश था, वही उसे मौन किए था। इस मौन में हृदय की जो सम्पूर्ण श्रद्धा समर्पित थी, वह शब्दों की सीमा से परे थी।

अन्नदा का टूटा-फूटा चूल्हा बहू ने समेट कर एक टोकरी में भर कर मन्दा से बाहर फेंक आने को कहा।

सफाई कर के वह वहीं बैठ गई। उसे अकेली देखकर अन्नदा ने कहा —"बहू ! बच्चे कहा है ? तुम सब ने खाना खा लिया ?"

"हां, बच्चे खा पी चुके है। बाहर खेल रहे है। मैं भी खा लूंगी। पर तुम जो खाना छोड़ बैठी हो, उसका क्या होगा ?"—बहू के स्वर में आज गवने के दिन जैसी कोमलता थी।

अन्नदा हँसी—"मै क्या छोड़ूंगी बहू, खुद ही छूट गया है। अब भूख खतम हो गई है। मुझे ऐसा लगता है कि मै अब अधिक चलूंगी नही। मेरे मन पर घर की चिन्ता का जो बहुत बडा बोझ था, वह बोझ अब हल्का हो गया है। अगर मै मर गई होती तो मेरा प्राण इस घर के आस-पास ही भटकता रहता। अब मै मरी भी तो शान्ति से मरूँगी, मेरे मन को अब किसी प्रकार की चिन्ता नही।

बहू ने अधीर होकर केवल इतना ही कहा—"अम्मा···!"

"पगली इसमे अधीर होने की क्या बात है ? तुम सब को सुखी देख कर, भरा-पूरा परिवार छोड़ कर मै मरी तो मेरे लिए इससे बड़ा सुख क्या होगा ? मौत जिन्दगी का आखिरी पडाव है। उसका पिछला रास्ता अच्छी तरह गुजरा हो, अपनी जिन्दगी के पिछले पड़ावों में अपनी करनी की कुछ ऐसी छाप—जिससे आने वाले मुसाफिरों को चैन मिले, राह मिले, यह लगे कि उससे आगे जाने वाले मुसाफिर ने कुछ अच्छाइयाँ छोड़ी है। जो छोड कर चलता है, उसी की जिन्दगी का सफर सफल होता है और उसका आखिरी पडाव अपनी निशानी छोड़ जाता है। दुनिया के और जीव-जन्तु अपने लिए जीते है, पर आदमी को केवल अपने लिए नही जीना चाहिए, उसकी जिन्दगी के तौर-तरीकों का असर दूसरों को भी भोगना पडता है, इसलिए आदमी को अपने जीने के तौर-तरीके ऐसे रखने चाहिए जो अपने बाद आने वाली पीढ़ी के लिए एक अच्छी विरासत

छोड़ जाय। बहू, मेरा क्या है, मैं तो अब बुझता हुआ चिराग हूँ, जितनी रोशनी मैं दे सकती थी दे चुकी। तू उगता हुआ सूर्य है । मैं बुझ जाऊँ इसके पहले तेरे भोर की उजली किरण इस घर को प्रकाश से भर दे, इसी कामना के लिए मैं छटपटाती रही।" अन्नदा बोलती जा रही थी, पर बहू अन्नदा के घुटनों में मुह छिपाये अपने आँसुओं के गगा-जल से नहा रही थी।

अन्नदा को सतोप था कि उसके स्नेहिल आंचल-तले दूसरे दिए की बाती जल उठी है।

□ □ □